कृष्ण सेवा प्राप्ति

एक व्यावहारिक मार्गदर्शक

एक महाप्रभु चरण पहाड़ी लेख श्रृंखला

एक

महाप्रभु चरण पहाड़ी

लेख श्रृंखला

कृष्ण सेवा प्राप्ति

यस्य प्रसादाद्भगवत्प्रसादो

यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि

ध्यायन्स्तुवंस्तस्य यशस्त्रि-सन्ध्यं

वन्दे गुरोः श्री-चरणारविन्दम्

सितंबर - २०१६

अनुक्रमणिका

समर्पण	5
मुखबंध	6
आनन्दातिरेक	7
अध्यात्म का आधार	14
भक्ति का प्रयोजन	17
भक्ति के प्रकार	20
निष्काम भक्ति	22
भक्ति का स्वाद	24
गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय	30

हरी नाम एवं दीक्षा	33
चेतना का गड़ना	40
जप का सार	44
दुर्बोध जप	49
साधु संग	52
धाम भक्ति	54
नवयुग में भक्ति	55
स्वतंत्र इच्छा	57
टालमटोल	60
भक्ति में बढ़ोतरी	62

समर्पण

यह लेखन मेरे शाश्वत आध्यात्मिक गुरुदेव परम पूज्यपाद श्री श्री १०८ प्रेमदास बाबाजी महाराज के कमल चरणों में समर्पित है। विनम्रता की प्रतिमूर्ति होने के कारण उन्होंने एक प्रेममयी धात्री बनकर मुझे जीव माया के गहरे अंधकार से उठाकर अपने अंतिम गंतव्य, कृष्ण सेवा प्राप्ति की ओर अग्रसर किया।

मुखबंध

यह लेख आध्यात्मिक प्राप्तियों और संवादों का एक बहुमूल्य संग्रह है। एक भगवत सेवा प्राप्त संत के सानिध्य के निचोड़ को प्रकशित करना ही इस लेखन कार्य का मूल उद्देश्य माना जाए। श्रीमन् चैतन्य महप्रभु की मूल गौडिय वैष्णव धारा, सिद्धान्त, जड़सूत्र और उपलब्धियां का स्वरूप इन महत्माओ के ह्रिदय मे पूर्णतः विद्यमन है। यद्यपि यह लेख गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय और उस धारा का आधिकारिक ग्रंथ या उसके विषेश आध्यात्मिक गुणसम्पदा के आधार होने का कोई दावा नहीं करता। इस लेख श्रृंखला में किसी भी संस्थापन या विचारधारा का अभिप्रेत अभिवेदन या खंडण को पूर्ण रूप से अनैच्छिक माना जाए। इस लेख का यही अभिप्राय है कि जनसाधारण शीघ्र ही निष्काम भक्ति का मार्ग पकडकर परम प्राप्ती की ओर अग्रसर हो। इसी भक्ति के मार्ग को ५३० साल पूर्व, कल्युग अवतार श्रीमन् चैतन्य महप्रभु ने प्रशस्त किया था।

आनन्दातिरेक

श्रीमान चैतन्य महाप्रभु की भौम लीला पूर्व निर्धारित था। फ़िरभी लीला रस हेतु उन्होंने अपने भक्त-वृंद के साथ अनेक रसमयी लीलाएं रची। इस संदर्भ में झारखंड के जंगल में भी जंगल के खूंखार जानवरों के बीच जो लीलाएं उन्होंने रची,उन लीलाओं का संकल्प भी पूर्ववत हो चुका था। प्रभुने वह उन्मादपूर्ण लीला इसलिए रची ताकि उन लीलाओं के माध्यम से हरि नाम के गौरव का एक बहुमूल्य उदाहरण वे दुनिया के सामने रख सके। यहाँ तक कि श्रीमान महाप्रभु और श्री रामानंद राया के बीच बैठक, लीला के हिस्से के रूप में पूर्व निर्धारित किया गया था। रामानंद राया के साथ अपने बातों के आदान-प्रदान से उन्होंने साधना एवं सेवा प्राप्ति का उच्चतम रहस्य दुनिया के सामने रखा। रामानंद राया उस काल के एक स्थापित विद्वान थे और दुनिया को उनके शब्दों में पूर्ण विश्वास था। इस कारण वश प्रभु ने अपने नित्य परिकर रामानंद राया के माध्यम से उस परम सत्य को स्थापित किया। प्रभुने इस तरह संवाद के माध्यम से साधना एवं भक्ति का प्रयोजन उद्घाटित किया। संवाद वर्ण आश्रम धर्म के प्रसंग से प्रारंभ हुआ और क्रमश: सेवा भक्ति के चार मुख्य भावों की तरफ़ बढा जहां दास्य, सख्य, वातसल्य एवं मधुर भावों के विषय में चर्चा हुई। संवाद के दौरान रामानंद राय ने कई वर्धमान भक्ति संबंधित सिद्धांत प्रस्तुत किए परन्तु प्रभु ने एक एक करके सारे सिद्धांतो को यह कहके नकार दिया की वे जीव के अंतिम प्रयोजन के संदर्भ में फलदायी नहीं हैं।

भगवान ने अंत मे राया के केवल इस पक्ष का समर्थन किया की भक्ति की उच्चतम श्रेणि केवल ब्रज गोपियों का प्रेम है जो जीव को समर्पण और भजन द्वारा हासिल है। यही ब्रज प्रेम का स्वरूप भक्ति की चरम सीमा है और जीव को इस प्रेम के अलावा किसी और विषय की कामना नहीं करनीं चाहिए। यहीं से गौडिय वैष्णवों की मंजरी भाव साधना का स्रोत मिलता है।

अधिक्तर जो लोग झारखंड के वन क्षेत्रों में निवास करते हैं वे अपने रहन-सहन और सोच में ज्यादातर जानवर प्रवृत्ति रखतें हैं। ऐसे लोग सभ्य मानवीय आवास से दूर हैं। वृन्दावन यात्रा के दौरान एक बार श्रीमन महाप्रभु झारखण्ड के जंगलों से पारित हुए। जंगल से पारित होते हुए उन्हें यह अहसास हुआ कि जंगल निवासी उनके दया पात्र हैं और उन्होंने यह मन बना लिया कि उन्हें झारखण्ड के जंगलों मे कृपा वर्षा करनी होगी ताकि उसका प्रभाव आने वाली पीढियों पर भी रहे। सीमित बुद्धि के कारण वे लोग किसी शास्त्र को स्वीकार नहीं करते थे। मूर्ख और बुद्धिमान के बीच का फ़र्क भी कर पाने में वे असमर्थ थे, यहां तक कि सही और गलत का फ़ैसला भी कर पाना उनसे संभव नहीं था। हालांकि श्रीमान महाप्रभु आश्वस्त थे कि यदि झारखण्ड के जनसाधारण की चेतना में अगर कोई बदलाव लाना है तो यह केवल किसी चमत्कार के जरिए ही हो सकता था। इस प्रक्रिया को सिद्ध करने के लिए प्रभु को एक चमत्कार रचना अनिवार्य था। आम तौर पे जो व्यक्ति चमत्कार करता है उसे जनसाधारण इश्वर की तुलना में भी श्रेष्ठ समझता है। परन्तु महाप्रभु का

यही उदेश्य था की लोगों के सामने ऐसी मिसाल कायम करें के लोग हरि नाम को सर्व श्रेष्ठ माने। प्रभु का यही उद्देश्य था कि किसी तरह झारखण्ड के लोगों में हरि नाम के प्रति श्रद्धा जागे। प्रभु नाम की महानता एवं उसके असीम प्रभाव की स्थापना वे इस तरह करना चाहते थे।

जो जानवर जन्मजात खूंखार मांसाहारी हैं, जो केवल हिंसात्मक मांसाहार में उत्सव मनाते हैं, ऐसे जीवों का पूर्व जन्म भी सुकृति विहीन ही होता है। ऐसे जीवों का भक्ति से किसी भी जन्म में नाता नही मिलता। जानवरों के अनेक प्रकारों में भगवत धर्म के पूर्वापर सम्बन्ध में विभिन्न श्रेणि के जीव होते हैं। अपने वन लीला के दौरान प्रभुने इस प्रकार के जनवरों को नाम गर्जन के लिए कृतार्थ प्रेरित किया जो अगर देखा जाए तो मनुष्य जाति के कुछ जीवों के लिए भी असंभव लगता था। शेरों और बाघों ने "कृष्णा" "कृष्णा" का गर्जन शुरू कर दिया। अन्य वन के पशु पक्षी इस प्रकार से नामामृत में डूब कर मदमस्त हो गए कि अगर तमाम शुद्ध भक्त भी संकीर्तन में हरि नाम गान करते फिरभी इन वन पशुओं की तरह उल्लसित नही हो पाते। एक प्रशिक्षित बंदर जब मदारी के इशारे पे नाचता है तो वह किसी भी दृष्टीकोण से चमत्कार नहीं कहा जा सकता। असली चमत्कार वह है जहां जानवर अपने जानवर प्रकृति को ही भूला दे। जिस तरह से वन पशु उस कलोल में आनंदविभोर होकर एक दूसरे के गले मिल रहे थे ऐसा लग रहा था कि बरसों बिछडे हुए अंतरंग मित्र किसी उत्सव के अवसर में हर्षोन्मत्त अवस्था में मिल रहे हो। चारों और से विभिन्न प्राणियों के स्वर समूह में हरी नाम की चीत्कार सुनाई

पड रहा था। पशुओं के प्रजातियों में कोई भेद नहीं था और ऐसा लगता था जैसे उत्तम भक्तों का एक विलक्षण समूह भक्ति के उच्चतम भावावेश स्फुरित हरि नाम महोत्सव में गले लग रहे हों। आज भी श्रीमन महाप्रभु एवं वन पशुओं के दिव्य चरण चिन्ह, चरण पहाडी क्षेत्र में मूर्तिमान स्वरूप में मिलते हैं । उनके चरण चिन्ह उन जीवों के प्रेमोन्मत अवस्था के कारण शिलाओं को पिघलाते हुए उनपे अंकित पाए जाते हैं। शुद्ध नाम के इस पवित्र ध्वनि के बल पर श्रीमन महाप्रभु ने असंभव को संभव करके दिखाया। महाप्रभु ने वन पशुओं को एकत्रित करके केवल "कहो कृष्ण" इन शब्दों के साथ पशुओं को प्रेरित किया। वो नामी जो नाम का मूर्तिमान स्वरूप है उस पर्ब्रहम मूर्तिने वन पशुओं को नामादेश दिया।

लीला के सारे जानवरों की पशु प्रवृत्ति महाप्रभु का दर्शन पाते ही पल भर में नष्ट हो गया। श्रीमन महाप्रभु के दर्शन मात्र से उनके अनेक जन्मों का प्रारब्ध नष्ट हो गया। जब कोई निष्कपट, निर-अपराध भाव से एक बार कृष्ण नाम लेता है तो पापों का पहाड क्षण मात्र में भंग हो जाता है। इसी भाव से जब कोई दूसरी बार कृष्ण नाम लेता है तब कृष्ण प्रेम प्राप्ति हो जाता है। जहां जानवरों को यह प्रेम केवल दो कृष्ण नाम उच्चारण के फलस्वरूप मिला वहां मनुष्य को अनंत बार नाम जाप के बावजूद प्रेम का गंध मात्र भी नही मिलता। जो झारखंड के पशु पक्षियों ने अनुभव किया वह अपराध के कारण मनुष्य जाति को सुलभ नहीं था। जब कोई निरपराध भाव से हरि नाम लेता है तो पाप रूपी पहाड किसी रुई के पर्वत की भांति जलकर खाक में मिल जाता है।

हालांकि अपराध का स्वरूप किसी शील-पर्वत की तरह अटूट और ठोस होता है जो साधारण हरि नाम पाठन से ध्वस्त नहीं हो सकता ।जब वैष्णवों को किसी अन्य वाष्णव के कारण पीडा पहूंचती है तो वैष्णव अपराध का दोष लगता है जिसके कारण पाषाण रूपी अपराध भजन कि लता को नष्ट कर देता है। इसी कारण ऐसे वैष्णवओं का भजन फलित नहीं होता ना प्रेम प्राप्ति का दूर दूर तक संजोग बन पाता है। जब कोई भक्त इस प्रकार का अपराध करता है तब वैष्णव अपराध के फल स्वरूप वह कठोर हृदय पाता है। भक्ति की तरलता ऐसे हृदय में कभी प्रवाहित नहीं हो सकता। जब हरि नाम का हथौडा ऐसे हृदय पे पडता भी है तो अपराध के संगीनता के कारण वह हथौडा दुगने वेग से पीछे की तरफ़ लौटा दिया जाता है और हृदय की कठोरता के बनावट को उध्वस्त नहीं कर पाता। श्रीमन महाप्रभु ऐसे जीवों के प्रति भी सहानभूति रखते हुए उनसे यह आग्रह करतें हैं कि वे अनवरत होकर हरि नाम लेते रहें।

जैसे पीलिया पीड़ित व्यक्ति को गन्ने का रस कडवा लगता है परन्तु उस मर्ज कि दवा गन्ने का रस ही होता है, उसी तरह जो जीव अपराधों से पीडित है , ऐसे व्यक्ति का छुट्कारा केवल अनवरत हरि नाम उच्चारण ही है। पीलिया पीड़ित व्यक्ति को आरंभ में गन्ना कडवा लगता है परन्तु उसके लगातार सेवन से रोग उपचारित हो जाता है ठीक उसी तरह हरि नाम के नित उच्चारण से अपराध से मार्ग निकल आता है। हालांकि वैष्णव अपराध का एक मात्र सरल उपाय पीडित वैष्णवों से हृदय पूर्वक क्षमा याचना के अतिरिक्त और कोई भी इलाज नहीं है। श्रीमान महाप्रभु

ने झारखंड के पशु-पक्षियाओं के संकीर्तन लीला से यह सिद्ध किया के हरि नाम ही ऐसा साधन है जिसके जरिए झारखंड के पिछडे मनुष्य वर्गों के हृदय में विनियमित भक्ति की ज्योति जगाई जा सकती थी। श्रीमन् महाप्रभु ने ऐसे कुछ असाधारण परिस्थितियों में किसी लीला के माध्यम से जन-कल्याण हेतु अपने भगवत्ता का परिचय भी दिया है।

हमारे परम पूज्य गुरुदेवने उसी लीला स्थलि में जो कुजु गांव, जिल्हा रामगढ, झारखंड में पडता है, एक मनोरम्य मंदिर की स्थापना कर, श्रीमन महाप्रभु की भव्यता को आदरांजलि अर्पित की है। वह घटना स्थल आज भी उस अलौकिक लीला का प्रतिनिधित्व कर रहा है और वह जगह ऐसा अनुपम कृपा क्षेत्र बन गया है जो सारे ब्रह्मांड को श्रीमन महाप्रभु के अनुग्रह से कृतार्थ कर रहा है। वन पशु पक्षी महाप्रभु के उस दिव्य संक्षिप्त समागम के बाद गोलोक धाम प्राप्त कर गए।

श्रील गुरुदेव को कोटि कोटि दंडवत कि उन्होंने जन कल्याण हेतु आधुनिक काल में २५ वर्ष पूर उस लुप्त घटना स्थलि को खोज निकाला। यह सद्गुरुदेव की तीव्र इच्छा है कि श्रीमन महाप्रभु द्वारा स्थापित रागानुगा भजन साधना पद्धति के अनुरूप साधक श्री श्री राधा कृष्ण के चरण कमलों की सेवा प्राप्त करें। सद्गुरुदेव यह चाहतें हैं कि भक्त गण श्रीमान महाप्रभु द्वारा स्थापित उस भजन प्रक्रिया को गले लगाएं जो आज के युग में महाप्रभु द्वारा मानित राधाकुंड के ६ मुख्य परिवारों के माध्यम से प्रचलित हैं। यही दिव्य प्रक्रिया भाव साधना का स्रोत है। "बाबाजी" के नाम से जो हम पूज्य गुरुदेव को संबोधित करते हैं,वह,

मुख्य ६ परिवारों में नित्यानंद परिवार से ताल्लुक रखतें हैं। नित्यानंद परिवार के साधक ज्यादातर ब्रज भूमि के राधाकुंड क्षेत्र में पाए जाते हैं। उनका आवास कुछ हद्द तक जगन्नाथ पूरी एवं नवद्वीप में भी पाया जाता है। लीला क्षेत्र चरण पहाडी तक पहुंचने के लिए रामगढ टाउन तक आने के बाद ४ लेन पथ लेते हुए श्री राम चौक तक जाना पडता है जहां से कुजु के कोलियरी नं 3 तक का रास्ता जाता है। यही चरण पहाड़ी की तलहटी है।

अध्यात्म का आधार

जीवन का सही उद्देश्य साकार करने के विभिन्न साधन हैं। वे ज्ञान योग, कर्म योग, राज या क्रिया योग और भक्ति योग हैं। योग के विभिन्न रुपों में भक्ति योग सर्व सरल है। इसका यह कारण है की मन लौकिक तत्व होते हुए भी, वह बुद्धी अहंकर से परे उस परम तत्व की प्रप्ति में निवेश किया जा सकता है। उस परम सत्ता का नाम ही ईश्वर है। वह ईश्वर जो क्षमाशील , दयालू और सर्वव्यापी है वह भक्ति व्दारा सरलता से प्रप्त हो सकता है। भक्ति केवल एक प्राथमिक आधारशीला पर निर्धरित है और वह यह है की ब्रह्माण्ड का एक शासक है और जीव मात्र उस शासन कर्ता द्वारा नियन्त्रित है| भक्ति का रहस्य उसी व्यक्ती को उजागर होता है जिसे यह बोध हो जाता है की इश्वर ही परम भोगता है और जीव मात्र भोग्य है। भक्ति के माने उस व्यक्ती को दुर्लभ है जो स्वभाव से संदिग्ध और आलोचनात्मक है। यद्यपि भक्ती प्रक्रिया उस अलौकिक, अत्तुत्तम और अभेद्य लोक का महामार्ग है। वह अत्तुत्तम परम लोक सत्य है न की समृद्ध मानव कल्पना की उपज।

आधुनिक सभ्यता अपने उपभोग के लिए पर्याप्त साधन जुटा चुका है। प्राचीन दार्शनिक चार्वाक के अनुसार जीवन का लक्ष्य प्रकृति के संसाधनों का उपभोग कर इन्द्रियो की तृप्ति मात्र है। इस दर्शन के अनुसार मानव जाति को अपने इंद्रियों को ही उच्चतम सुख पाने का माध्यम मानना होगा। मगर इस सोच का विस्तार एक मृग त्रिश्ना मात्र है। हम अपने कार्यस्थल एवं

घरों मे इसी कामनावश कार्यरथ है कि एक दिन हम अपने बच्चों को अधिक से अधिक खुशियो की सामग्री जुटा कर, साथ ही साथ उन्हे अच्छी शिक्षा प्रदान करने में सहायक बने। यही क्रिया दुनिया भर में जारी है और इस दिशा में सम्पूर्ण विश्व अथक यत्नशील है। दुनिया का आम आदमी खुद आरामदायक बनाने में रुचि रख साथ ही साथ सामग्री सगाई के माध्यम से बारहमासी खुशी अवलोकन मे जुट गया है। आधुनिक मानव प्रजाति अपने ही द्वारा रचित अवधारणाओं के आव्यूह जाल मे फंसे होने के कारण जीवन शैली जटिल हो गयी है। जिस प्रकार रेशमकीट अपने ही द्वारा रचित कोया मे फंस जाता है ठीक उसी प्रकार आधुनिकरण के मायाजाल मे मानव भी फंस चुका है। भगवान, एक आम आदमी के लिए एक गूढ़ विषय बनकर रह गया है। ईश्वर रहित इस प्रपञ्च में मानव इस प्रकार लिप्त है की वह पुर्णत: मान बैठा है की परम आनन्द का स्रोत इसी प्रपञ्च से निकलता है। सामान्य ज्ञान हमें यह एहसास दिलाता है की संवेदी परितोषण हमें तथाकथित सांसारिक साधनो के जरिए थकाकर दुखो की मृग तृष्णा मे ढकेल देता है। सांसारिक वासना मे लिप्त होने के कारण असंतोष और बोरियत हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। यह भी एक अनुभव है कि हम सांसारिक सुखों के सीमित दायरे मे खीझ महसूस करते है। एक व्यक्ति जो सिनेमा थिएटर में आनंद बटोरने के लिए जाता है वह बाहर आने पर उस सिनेमा का रस फिर एक बार अनुभव करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। लेकिन अफ़सोस उसी सिनेमा को बार बार देखने पर भी उसे वह पहले वाला उल्लास हासिल नही होता।

मानसिक गतिविधियों के अंतर्गत दो व्यापक विषय क्षेत्र सामने आते है। एक पूर्णत: सांसारिक और दूसरा ईश्वर उन्मुख इन्द्रियो से परे आलौकिक अनुभवात्मक क्षेत्र मिलता है। बडे परिश्रम और श्वास अनुभूति के बाद यह पता लग जाता है की आनन्द का स्रोत प्रपञ्च मे नही है। इसका यही निष्कर्ष निकलता है की उस इश्वर मे ही कही आनन्द का पता होगा। वह मनस ही है जो जीवन की विषमताओं का मूल स्रोत है। अगर इस मन को भक्ति के सुगम मार्ग मे निवेश किया जाए तो इस ब्रह्माण्ड सम्बन्धित सारी अनुचित धारणाओ का तुरंत विलय हो जाए।

भक्ति का प्रयोजन

मन का संकाय प्राकृतिक होने पर भी बडी सरलता से उस तत्त्व पे स्थित किया जा सकता है जो मन, बुद्धि और इंद्रियों से परे है और उस परम निधी को पाने के लिए नियोजित किया जा सकता है जिसे शास्त्र रूप गुण संपन्न भगवान कहता है। वह परमेश्वर जो प्रेम, दया और क्षमा का महासागर है वह भक्ति मार्ग में आसानी से उपलब्ध हो जाता है।

अपने अस्तित्व के उद्देश्य से अनजान जीव इस अथाह कायनात मे फेंका गया। वह जिसे जीवन यात्रा कहते है, जीव अनायास ही उद्भेद चक्र मे पडकर स्वयं प्रारंभ करता है। चक्र के चलते वह सयाना भी हो जाता है। किसी भी प्रकार की परिपक्वता केवल मानव प्रजाति में देखा जाता है। अन्य जीवित प्राणियों की तरह आमतौर पर इंसान भी खाना, संसर्ग, सोना तथा आत्म-संरक्षण मे निपुण है। यहां भी मानव प्रणाली केवल जीवन शैली को बढ़ाने में देखा जाता है जो चार ऊपर उल्लेख गतिविधियों पर निर्भर है। यहाँ किसी पांचवें गतिविधि की कोई खुशबू नहीं मिलती। जीवन है पर जीवन मार्गदर्शन पुस्तक रहित। हालांकि यह देखा जाता है की अधिक विकसित मानवों के जीवनी में एक पांचवी गतिविधि का समावेश मिलता है। अपने अस्तित्व से जुड़े सवाल ही जीव को इस पांचवें गतिविधि की संभावना से जोडता है। यह पांचवीं गतिविधि " मैं कौन हूँ,मैं यहाँ क्यों हूँ?, जीवन क्या है? मौत क्या है? " जैसे प्रश्नों के आगमन के साथ शुरू होता है। इस प्रकार एक बुद्धिमान जीव उस पांचवी गतिविधि का नींव रखते हुए;

अपने स्रोत की तरफ़ लौटने लगता है। विशेष रूप से मानव प्रजाति में तीन मुख्य प्रकार देखे जाते है। एक वे लोग जो खुद को अपने झूठे स्वयं या "झूठी मैं" के बुनियादी अस्तित्व के आसपास घूमती गतिविधियों के साथ व्यस्त रखने में संतुष्ट हैं। कुछ मानव इस प्रकार के होते है जो अपने प्रकृतिक रूप मे जिए जा रहे जैसे कोई जीवन का रस्म मात्र निभा रहें हों,यह परवाह किए बगैर की जीवन का वेग उसे किस ओर ले जा रहा है। मनुष्य की तीसरी श्रेणी में वे लोग है, जो संशोधनात्म्क जीवन जीते हुए, मृत्यु और उसके परे क्या है इसका खोज कर अपने अस्तित्व पर एक स्थायी छाप छोड़ जाते है। अस्तित्व की पहेली को हल करते हुए यह महामानव कम से कम जीवन की स्रीत को परिभाषित कर अपना जीवन सार्थक कर देते है।

जब मानव अपने मूल की खोज करते हुए निकल पड़ता है वह दुनिया के बाजार मे अपने मूल प्रश्नो के बने बनाए उत्तर भी पाता है जो उसे भ्रांत कर सकते है। मुख्य रूप से परम वास्तविकता की ओर तीन मार्ग जाते है। वे है ज्ञान, क्रिया और भक्ति योग के मार्ग । भक्ति योग फिर दो रूपो में विभाजित हो जाता है। उसका एक रूप कर्म योग है और दूसरा रूप यथायोग्य भक्ति योग है जो सम्पूर्ण समर्पण का मार्ग है। यथायोग्य भक्ति अपने इष्ट पे पूर्ण निर्भरता का मार्ग है। क्रिया योग अनासक्त साँठ-गाँठ का मार्ग है। पवित्र ,अपवित्र स्पंदन के मंच से चीजों को समझने का पंथ ही क्रिया योग है। इस प्रकार क्रिया योग का लक्ष्य मन और शरीर के दायरे से परे अस्तित्व के स्पंदन के द्वारा परम सत्य को

पकडना है। योग और ध्यान, क्रिया योग के अभिन्न अंग है। यह जरूरी नही की क्रिया योग एक व्यक्तिगत भगवान की अवधारणा की ओर अपना नेतृत्व करे। दीक्षा की प्रक्रिया के माध्यम से, क्रिया योग अग्रणी सृष्टि के रहस्य खोलते हुए आत्मा की ओर बढने की चेष्टा करता है। ज्ञान योग आंतरिक अध्ययन तथा बुद्धि का उपयोग करते हुए विषयवस्तु और गैर-विषयवस्तु के भेद खोलने का प्रयास करता है। ज्ञान योग मूलत: सांसारिक अस्वीकार का मार्ग है। हालांकि झगड़ा और पाखंड के इस युग में, ज्ञाना योग निरपेक्ष की ओर शायद सबसे कठिन मार्ग है। कर्म योग भक्ति की नवजात प्रपत्र है जहाँ हम अपने मन को एक निजि इष्ट को समर्पित करते हुए उस धारणा को हमारे जीवन के सभी क्षेत्रों में विस्तार करते हुए सभी सांसारिक गतिविधियों को गुरु और भगवान की सेवा मानकर समर्पित कर देते है। अपनी परिपक्व अवस्था मे यही कर्म योग यथायोग्य भक्ति का रूप धारण करता है। भक्ति योग की यही पराकाष्ठा है कि भक्त और भगवान के बीच एक शाश्वत संबंध स्थपित हो जाता है जिसके फलस्वरुप भक्त अपना सर्वस्व भगवान को अर्पण करता है। भगवान इसके एवज मे भक्त को सारी संसारिक गतिविधियो से मुक्त कर प्रेमा भक्ति का अनुपम उपहार सहज ही भेट कर देते है।

भक्ति के प्रकार

भक्ति के कुछ विभिन्न प्रकार देखने होंगे हमें भगवत प्राप्ति की तरफ़ पोतारोहण करने से पहले। भक्ति अनिवार्य रूप से एक उच्च इकाई को आत्मसमर्पण करने का नाम है। देवताओं या अन्य मानवीय तत्वों के संबंध मे की जाने वाली प्रक्रिया को उचित भक्ति की सेवा नहीं कहा जा सकता। "सात्विक शास्त्रों" पर आधारित विष्णु-तत्त्व को भजने का नाम ही साकार भक्ति है। जो प्रक्रिया श्रीमद भागवत, श्रीमद भगवद गीता और चैतन्य चरितामृत तहत दिव्य शास्त्रों के आधार पर प्रतिष्ठित है उसी प्रक्रिया को उचित रूप में केवल भक्ति कहा जा सकता है। ये स्पष्टीकरण गौड़ीय वैष्णवो के "परम्परा ढांचे" पर आधारित हैं। भगवान नरसिंह, भगवान रामचंद्र या महा विष्णु के स्रोत श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु के चरणो मे पूर्ण समर्पण ही केवल भक्ति का उचित रूप कहा जा सकता है। अन्य देवी देवताओं को समर्पण भक्ति का आभास मात्र होने के कारण उसे केवल भक्ति नही कहा जाएगा। देवी देवताओं की भक्ति किसी विशिष्ट स्वार्थ पे आधारित होने के कारण इसे मात्र भक्ति प्रदर्शन कहा जा सकता है। केवल भक्ति के विपरीत साधारण देवताओं की भक्ति के परिणाम चिरकाल और अनित्य होने के साथ साथ ऐसी भक्ति की अभिव्यक्ति भी क्षणिक होती है। जो केवल शुद्ध भक्ति का अनुसरण करता है वह प्राकृतिक गतिविधियो से ऊंचा उठ जाता है। ऐसी भक्ति स्थायी और अपरिवर्तनीय है। ऐसी भक्ति समय की अवधि में परिपक्व

होकर पूरी तरह भक्ति के प्रयोजन तक पहुंचकर ही दम लेता है, भले इस प्रक्रिया को पुष्ट होने मे कई जीवन काल लग जाए। केवल भक्ति का सर्वोच्च प्रयोजन विष्णु अथवा श्री कृष्ण की सेवा प्राप्ती ही है जो इस सांसारिक वस्तुगत योजना से परे है।

निष्काम भक्ति

शुद्ध भक्ति निष्काम भक्ति का पर्यायवाची शब्द ही है। यह भक्ति का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। अगर भक्ति इन्द्रिय विषयक आशय या इन्द्रिय संतुष्टि के लिए किया जाए तो यह एक आत्म पराजित गतिविधि बन जाता है। प्रार्थना आमतौर पर कुछ उद्देश्य हेतु किया जाता है। सांसारिक लोगों और / या सांसारिक उद्देश्यों से भरा अंतरंग, केवल भक्ति के प्रतिकूल है। कामनाओं से ग्रस्त प्रार्थना अगर वह सर्वशक्तिमान ईश्वर सुन भी लेगा फिर भी ऐसी पुकार जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त कराने में असमर्थ रहेगा। निष्काम भक्ति का आधार इस धारणा पे टिका है की वह हमे जन्म मरण के चंगुल से सदा सर्वदा के लिए छुडा देगा। जब तक हम एक अलौकिक जीवन से प्रेरित रहेंगे तब तक हमारे पास यह आश्वासन रहेगा की हमारा अस्तित्व वापस इस नश्वर दुनिया से आने से बाचा रहेगा। निष्काम भक्ति ईश्वर के प्रति निःस्वार्थ सेवा का प्रतीक है। हमारा भौतिक शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश अर्थात् पांच तत्वों से रचित है। इस शरीर के भीतर प्राण का संचार इन पांच तत्वों से परे है। इस प्राण के उद्धारक केवल सर्वशक्तिमान भगवान ही है। निष्काम भक्ति मे अपने दैनीक अनिवार्य और वैकल्पिक कार्य को केवल भगवान श्री कृष्ण की प्रीती के लिए किया जाता है। अन्य कामना के होते जब भक्ति की जाती है तो वह 'वस्तु प्रेरित' भक्ति की श्रेणी में आ जाता है। श्री कृष्ण के चरण कमलो मे समर्पित हर कार्य निष्काम भक्ति का प्रतीक

है और कर्म योग का ही सूचक होगा। अन्य अभिलाशा शून्य २४ घण्टे , ३६५ दिन श्री कृष्ण का सेवा बोध ही शुद्ध भक्ति का आधार है। हालांकि यह केवल शुद्ध भक्ति की प्रक्रिया के प्रारंभिक चरण का प्रतिनिधि माना जाएगा। कृष्ण सेवा मे मन को हर समय सावधान होने की जरूरत है और जीव को सदा आत्मनिरीक्षण की जांच के दायरे में होना चाहिए। सेवा प्रतिपादन के समय मन निरन्तर निर्मल रहे। जब कोई कर्मठता से सांसारिक लेनदेन को समझने का प्रयास कर उसे श्री कृष्ण सेवा के अनुरूप ढलेगा, हर समय श्री कृष्ण तृप्ती के लिए प्रयत्नशील रहेगा, ऐसे व्यक्ति का हृदय जल्द ही श्री कृष्ण सम्पर्क का अभिवादक होगा। ठाकुर जी(भगवान) हृदय के माध्यम से ऐसे जीव के साथ संपर्क जोड भीतर से उचित और अनुचित कार्यो का ज्ञान देते है। जब जीव इस तरह लगातार ठाकुरजी के संसर्ग मे जीवन व्यापन करता है तो वह कर्म योग मे निपुण हो जाता है। कर्म योग का अन्तिम लक्ष्य, प्रेरणा रहित सांसारिक कार्यों से ऊपर उठकर धीरे-धीरे शुद्ध भक्ति की सीढ़ी चढ केवल कृष्ण सेवा प्राप्ति ही है।

भक्ति का स्वाद

गौडीय वैष्णवों में "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे" इस महामंत्र का निरंतर श्रव्य आवाज में जप, जीवन का मौलिक नियम माना गया है। यह जीवन चक्र से मुक्ति का सबसे आसान प्रक्रिया है। यह विधि कलियुग अवतार श्रीमन चैतन्य महाप्रभु द्वारा लोकप्रिय किया गया।

हम सामान्य रूप से आत्म-साक्षात्कार के विज्ञान की बाते करते हैं। लेकिन अनुभव क्षेत्र में यह संभवत: एक कला है। एक जीवन कला जो सीखा जा सकता है, आवेदन किया जा सकता है। जो एक पूर्ण विकसित विज्ञान के रूप में एहसास और प्रकट किया जा सकता है। चीजों के विज्ञान संदर्भ में "क्या" सबसे महत्वपूर्ण है। उस "क्या चीज" को कैसे हासिल किया जाता है वह ध्यान, अभ्यास और आवेदन पर निर्भर है। इन शक्ति बिन्दुओ के नियन्त्रण से हमे वह चीज हासिल होता है। यह अल्बर्ट आइंस्टीन, थॉमस अल्वा एडीसन जैसे महान वैज्ञानिकों के जीवनी से स्पष्ट होता है। इन लोगों का आविष्कार और खोज किस क्रमश विधि से हुआ इसका खुलासा स्पष्ट रूप से बताया नही जा सकता। एक आविष्कारक सत्य पे पहुंचने के बाद उन आविष्कारों का समर्थन गणितीय या तार्किक प्रतिमान से करना उनके लिए अती सुलभ था। परन्तु उस प्रक्रिया के दौरान उस खोज की क्या दशा होगी यह बताना उनके लिए असंभव सी बात थी। शास्त्र इसका प्रमाण है कि श्री कृष्ण ही

जीवन का अति वांछित प्रयोजन है और उन्हे पाने की विधी भी शास्त्र मे अंकित है। भक्त जीवनी भी इसका एक और प्रमाण है। इसके अलावा इस विषय मे और कोई संशोधन अनावश्यक माना जाएगा। किसी जड़ जागतिक विषय के मुकाबले कृष्ण प्राप्ति का उपाय करना ही बुद्धिमानी माना जाएगा। श्री कृष्ण हमारे जीवन की वास्तविकता बन सकते है। कृष्णा एक वस्तु या आविष्कार नहीं है। श्री कृष्ण उच्चतम सत्य है और निरंतर प्रयास और दृढ़ विश्वास से वे हमारे वास्तविकता का हिस्सा बन सकते है। दुर्भाग्यवश आज कृष्ण चेतना केवल एक सिद्धांतवादी "सूत्र" बन कर रह गया है। कृष्ण भावना मे हलांकि लोग मिल जाएंगे मगर उनमे कृष्ण मिलन की तडप नही है। ऐसे मे कृष्ण मिलन हो भी तो कैसे। आज कृष्ण प्राप्ति भी अटकलबाजी का विषय बन गया है। असल कृष्ण प्रेम से मानव वंचित है। आज कृष्णत्व तो है लेकिन वह भाव की कमी है जो गोपियों के स्वामी को बंदी नहीं बना पाते।।

मूलरूप से भगवत प्राप्ति हेतु 2 मौलिक कदम उठाने होगें।

- शरीर संबंधित गलत धारणाओं से मुक्ति
- मन , बुद्धि, अहंकार से परे उस दिव्य सनातन श्रीकृष्ण की अनुभूति।

यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए के स्वत:के मूल स्वरूप के अनुभव से पहले श्रीकृष्ण की अनुभूति संभव नहीं। जब तक अनुभवात्मक मंच पे कृष्ण दासत्व का बोध नहीं होगा तब तक कृष्ण परिणय भी संभव नहीं।

कई स्वयं सिद्ध संत कृष्ण के निराकार पहलू से परिचित होने के बावजूद जीवन के अन्तिंम गंतव्य से अनभिज्ञ हैं। वह गंतव्य है सगुण साकार कृष्ण की सेवा प्राप्ति। गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय में इसी साकार रूप सेवा का विधान है। गौड़ीय वैष्णव संस्कृति के तहत भक्त श्री कृष्ण के दासानुदास होने का भाव स्थापित करता है। ऐसा भक्त साधन-भजन द्वारा इस दास भावना मे स्थित होकर श्री कृष्ण सेवा में तत्पर रहता है। इस भाव की गहन अनुभूति भक्त को स्वप्न या समाधि अवस्था में ठाकुरजी (श्री कृष्ण) कराते हैं। एक बार दासत्व का भाव हृदय में स्थापित होने के बाद, भक्त अपनी साधना मे और गहन होते जाएगा। भाव राज्य के कई अनुभव सामने आते रहेंगे । आध्यात्मिक भावनाओं का रसकोष ठाकुरजी भक्त के हृदय में स्पंदित कर देते हैं। चूंकि भक्त ठाकुरजी के साथ संबंध स्थपित करना चाहता है वे भक्त से मित्र, पुत्र, प्रेमी या दास का संबंध जोडकर उस भक्त के साथ एक अटूट रिशते में बंध जाते हैं। आध्यात्मिक प्रक्रिया एक गौड़ीय वैष्णव भगवंत प्राप्त सद्गुरु के निर्देशन मे ही किया जाना चाहिए। यह विषय अगले अध्याय में विस्तार से वर्णित किया जाएगा। साधना भक्ति और गुरु कृपा के अंतर्गत हमारे भौतिक शरीर के भीतर अध्यात्मिक गत ऐसे शिरोबिन्दु पहुंच सकते हैं की इसके कारण हमारा अनूप भाव शरीर निर्माण होता है। यह भाव शरीर आध्यात्मिक राज्य में भक्त की अपनी एक पहचान है। आध्यात्मिक शरीर दिव्य लोक मे प्रवेश पत्र का काम करता है। सद्गुरू "गुरू प्रणाली" के माध्यम से इस प्रक्रिया को शिष्य को उपलब्ध कराते हैं। आध्यात्मिक शरीर पूर्ण विकसित होने पर भक्त गोलोक वृन्दावन के सर्वोच्च

आध्यात्मिक क्षेत्र को पा लेता है। भक्ति में परिपक्वता होने पर मुक्त अवस्था मे आध्यात्मिक शरीर के वाहन के माध्यम से भक्त को श्री श्री राधा और कृष्ण के "व्यक्तिगत रूप ' का दर्शन होता है। जब हमारी जीवन ऊर्जा भाव एवं आध्यात्मिक मधुरता के शिखर पे होता है तब इसी भाव संग्रह के अन्तर्गत जुगल सरकार के दर्शन प्राप्त होते हैं। इस अवसथा में हमारी जीवन ऊर्जा भाव या आध्यात्मिक मधुरता का शिखर छूता है। आध्यात्मिक विज्ञान में "किस विधि से" यह भाव सब से अधिक महत्वपूर्ण है। इन प्रक्रियाओं को पहले से ही श्रीमान महाप्रभु के निर्देशों के तहत वृंदावन के 6 गोस्वामियों ने स्थापित किया है। इन प्रामाणिक प्रक्रियाओं के अनतर्गत आत्मसमर्पण करने से ही कोई सर्व सिद्धी प्राप्त कर लेता है। परंपरा के बुनियादी ढांचे मे निम्नलिखित मुद्दे शामिल हैं।

- उच्च गुणवत्ता के साथ सतत हरे कृष्ण महामन्त्र का जाप
- कृष्णा के चरणों में सभी जागतिक विचारों का आत्मसमर्पण
- बिना कोई तिरोहित भाव के उत्तम भक्तों के साथ सतत सत्संग
- अगर कोई भक्त युगल की प्रसन्नता के लिए भजन करता है तो युगल स्वत: ही उस भक्त को उसके हृदय की गहराईयों से संचालित करतें हैं।
- उच्च कोटि वैष्णव सत्संग एवं कृपा धारा के अन्तर्गत, भक्त सद्गुरू प्राप्ती करता है। ऐसा सिद्ध महात्मा भक्त को स्वीकृत करते हुए, भक्त को हरीनाम संस्कार प्रदान करते हैं। तत् पश्चात् भक्त

के समर्पित भाव को ग्रहण करते हुए, सद्गुरू भक्त को श्री राधा एवं कृष्ण मन्त्र से दीक्षित करते हैं।

- निरंतर साधन अभ्यास क्रम एवम श्री गुरु कृपा वर्षा से भक्त का मन मिथ्या धारणाओ से मुक्त होकर निर्मलता को प्राप्त करता है।
- सद्गुरू से समर्पित संसर्ग से कृष्ण मिलन की लालसा एवं सेवा का भाव निरन्तर विकसित होता है। ऐसे गुरु अनुगत भजन से यह धारणा सहज ही सम्भव हो जाता है।

शरीर बंधन से मुक्ति के लक्षण

भक्त स्वयं को अपने दुखों का दोषी मानने लगता है। अपने परिवेश मे दोष देखना बंद करता है। अपने अन्दर के दोषों को सटीक रूप से अनुभव कर पाता है। अपने अन्दर वैष्णव गुणों को संचारित करने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहता है। कदाचित पहली बार स्वयं को समझने लगता है। औरों की भावनाओ के प्रती अत्यधिक संवेदनशील बन जाता है। जैसे ही मन से गलत धारणाएं हटती हैं; भक्त, संसार, जीवन, रिश्ते नाते एवं परिवेश संबंधी एक गहन अनुभूती प्राप्त करता है। जब भीतर के चट्टान रूपी आशंकाएं बिखर जातीं हैं, नेत्रों मे अवरुद्ध भावनाओं का एक प्रचुर सैलाब उमड आता है। यही सद्गुरू भगवान की विशेष कृपा माना जाएगा। यहीं से भक्ती यात्रा का वास्तविक प्रारंभ होता है। सही मानों में भक्त के हृदय पटल में "नम्रता" का भाव विकासशील होता है। प्रत्यक्ष में, विनम्रता भक्त के बाहरी स्वरूप में सीमित न रहकर, भक्त के हृदय में ब्रह्मांड की योजना में भक्त के लघु स्वरूप के बोध रूप में वास करता

है। इस प्रकार अपने मानसिक दुरभिसंधि से छुटकारा पाकर भक्त धीरे धीरे अनेको जन्मों से संचित कृत्रिम भावनाओ से मुक्त हो जाता है। भक्त हृदय में सहसा एक उल्हास का स्पर्श अनुभव करेगा। भक्त इस भाव के वश ,एक चींटी का भी सम्मान करेगा। जड़ता से मुक्त होने का यही लक्षण है की भक्त एक वैश्या को भी आदर की निगाह से देखेगा। अपने को तृण से भी कमतर मानकर अपने में एक विशाल वृक्ष की भांती सहनशीलता का विकास करना ही एक सच्चे भक्त का उदेश्य बनेगा। ऐसा भक्त किसी व्यक्तिगत सामाजिक छवी का मुहताज नही रहेगा। व्यक्तिगत पसंद नापसंद की धारणाएं लुप्त हो जाएंगे। राय के मतभेद के कारण तनाव, क्रोध, दबाव और अशांति जैसे हालात पूर्णत: चेतना से मिट जाएंगे। भक्ति की उपस्थिति के यह केवल प्रारंभिक लक्षण हैं। शारीरिक भावनाओं से निजात पाकर, इन सब गुणों के विकास के बावजूद , यह कहा जाएगा की कृष्ण भावना रूपी अंकूर के यह मात्र प्रारंभिक स्थितियां हैं।

गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय

शुद्ध भक्ति के सिद्धांत अति प्राचीन काल से स्वेच्छाचार किया गया है। वेद और शास्त्र इस आशय करने के लिए पर्याप्त सबूत हैं। गर्ग संहिता, ४ वैष्णव सम्प्रदाय एवं इन सम्प्रदायों से जुड़े प्रणालियों का उल्लेख करते हुए इनके माध्यम से जीवन के परम लक्ष्य प्राप्ती विधी का संक्षेप में विवरण देता है। यह पद्धतियों ब्रह्मांडीय निर्माण के पूर्व काल से ही ईश्वर के हृदय मे स्थित था। यह वैदिक वैष्णव संप्रदाय भूतल मे निम्नलिखित आचार्यों की अध्यक्षता में स्थापित हुए।

रुद्र सम्प्रदाय - परम पूज्य श्री श्री विष्णुस्वामी

श्री सम्प्रदाय - परम पूज्य श्री श्री रामानुजाचार्य

कुमार सम्प्रदाय - परम पूज्य श्री श्री निंबार्काचार्य

ब्रह्म माध्व सम्प्रदाय - परम पूज्य श्री श्री माध्वाचार्य

स्वयं परब्रह्म श्री कृष्ण चन्द्र भगवान श्रीमन चैतन्य महाप्रभु के रूप मे, वर्ष १४८६ में जिल्हा नादिया, नवद्विप बंगाल मे अवतरित हुए। उन्होंने श्री श्री ईश्वर पुरी को अपना गुरु मानकर उनसे वैष्णव दिक्षा प्राप्त की। श्री श्री ईश्वर पुरी श्री ब्रह्मा माधव सम्प्रदाय से जुड़े एक सिद्ध महात्मा थे। श्रीमन महाप्रभु ने अचिन्त्य भेद- अभेद के सिद्धांत की स्थापना करते हुए आत्मा एवं परम तत्व के स्वरूप में परस्पर अखंडता एवं भिन्नता का

विवेचन किया। भारत में, बंगाल और पंजाब क्षेत्रों के बीच ब्रह्मा माध्व सम्प्रदाय, जिसे गौडिय सम्प्रदाय भी कहते हैं , अपने मौजूदा रूप में प्रख्यात है। अचिन्त्य भेद- अभेद का सिद्धान्त यह कहता है की हालांकि आत्मा, परम तत्व की तुलना ,गुणवत्ता में एक है,परन्तु मात्रा में अतिन्यून है। आत्मा "अणु" या अत्यल्प है जबकि निरपेक्ष (परम तत्व) "विभु" या अनंत है। श्रीमन महाप्रभु के आगमन काल से भक्ति का शुद्ध अस्तित्व अब तक कायम है।

भगवान श्रीमन महाप्रभु के करीबी सहयोगी जैसे श्री नित्यानंद प्रभु (क्रुष्ण लीला के बलराम), श्री अद्वैताचार्य(भगवान सदाशिव) आदियों को श्रीमन महाप्रभु का यह आदेश था की गौडिय परमपरा उन्हीं सहयोगियों के पारिवारिक वंशावली द्वारा प्रसारित एवं प्रचारित हो जिसका माध्यम वैष्णव दीक्षा बने। उनको यह आदेश था की योग्य शिक्षा दीक्षा से परमपरा की प्रामाणिक आध्यात्मिक प्रणाली की पवित्रता को कायम रखा जाए। श्री नित्यानंद प्रभु (क्रुष्ण लीला के बलराम) और श्री अद्वैताचार्य(भगवान सदाशिव) के परिवारों के अलावा श्रीमन महाप्रभु के आदेशानुसार नरोत्तम ठाकुर महाशय,श्री श्यामानंद पंडित,श्री श्रीनिवास आचार्य,श्री गदाधर पण्डित,श्री वक्रेश्वर पण्डित आदी भक्तों के परीवार वंशावली एवं दीक्षित भक्त परमपरा भी मुख्य गौडिय धारा से प्रमाणित रूप से जुड गए। इसी भक्त बपौती को शुद्ध रागानुगिया गौडिय परमपरा पद्धती के रूप मे पूर्ण मान्यता है। निम्नलिखित ६ प्रामाणिक परिवारों के अंतर्गत

आज भी भजन लालायित भक्त गण परमपरा से जुडे सद्गुरु से आध्यात्मिक दीक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

प्रामाणिक परिवार	परिवार ठिकाना
श्री नित्यानंद प्रभु	नबद्वीप / श्री राधाकुंड
श्री अद्वैताचार्य	नबद्वीप / श्री राधाकुंड
नरोत्तम ठाकुर महाशय	नबद्वीप / श्री राधाकुंड
श्री गदाधर पण्डित	नबद्वीप / श्री राधाकुंड / पुरुषोत्तम क्षेत्र
श्री श्यामानंद पंडित	नबद्वीप / श्री राधाकुंड / पुरुषोत्तम क्षेत्र
श्री श्रीनिवास आचार्य	नबद्वीप / श्री राधाकुंड

हरी नाम एवं दीक्षा

इस खंड में यह बताया जाएगा की किस विधी से कोई भक्त प्रामाणिक "परंपरा" प्रणाली पर आश्रित होकर श्रीमन चैतन्यदेव द्वारा स्थापित प्रबन्ध के अंतर्गत चलायमान हो सकता है। कोई व्यक्ती जब सद्गुरू के चरणों में समर्पित होकर ६ मुख्य गौडिय परिवारों के तहत किसी एक परिवार से जुडकर, सुगमता से साधन भजन प्रक्रिया में लगकर स्वयं का पूर्ण रूप से कल्याण कर सकता है।

सब से पहले यह समझना पडेगा के साधना एवं भजन किसे कहते हैं। साधना का यह तात्पर्य बनता है की किस तरह हम अपने शाश्वत लक्ष्य की ओर अपना ध्यान केंद्रित करें। साधना इन आध्यात्मिक प्रक्रियाओं का प्रयोजन है। "साधना" इस शब्द का मूल "साध्य" से निकलता है माने प्रयोजन तत्व। श्रीमन महाप्रभु का भूलोक मे पराकट्य जन साधारण में भगवत प्रेम वितराण हेतू हुआ। भगवत प्रेम के पहलू को तनिक अधिक गहराई से समझने की आवश्यकता है। प्रेम भक्ति का मुख्य स्वरूप ईश्वर तत्व की ओर नि: स्वार्थ सेवा भाव केंद्रित करना इसी को माना जाएगा। जब हम अपने निष्कलंक भावनाओं को ईश्वर के चरणों में दिव्य सेवा के रूप में अर्पित करते हैं , तो यह शुद्ध प्रेम का रूप ले लेता है।

हालांकि हमारे वर्तमान हालत में, हमारे विचार एवं भावनाएं शुद्ध अवस्था में नहीं हैं। भक्ति में हमारा प्रयास यही रहेगा की हम अपने दूषित भावनाओं को शुद्ध कर उन्हें अपने इष्ट श्री कृष्ण के चरणों में सेवा के

रूप में अर्पित करें। अपने शुद्ध रूप में हमारी आत्मा का स्वरूप अति सूक्ष्मतम है। भक्ति का यही चरम प्रय़ोजन है की हम अपनी चेतना के सभी परतों को शुद्ध कर, अपने "अविनाशी आध्यात्मिक शरीर" संवाहक के माध्यम से श्री श्री राधा कृष्ण के अती गोपनीय, मधुर,अंतरंग एवं अनंत लीलाओं की शृंखला में एक नित्य सेवक के रूप में प्रविष्ट हो सकें। यही हमारा उद्देश्य और "साधना" का मूल स्वरूप है। गौड़ीय वैष्णवों की भाषा में यही प्रयोजन तत्व है। भजन या भजन प्रणाली को "अभिध्येय" का नाम दिया गया है जिससे प्रयोजन तत्व हासिल होता है। भजन का मुख्य पहलू दीक्षा मंत्र एवं हरीनाम का जप है जो गौड़ीय वैष्णव परमपरा से जुडे सद्गूरू के चरणों में अनुगत्य स्वीकार करने के पश्चात प्राप्त होता है। भजन वही है जो ऐसे सद्गुरु के सानिध्य में, उनके आदेश एवं निर्देशों के तहत पालन किए जाते हैं। जब भक्त विनम्रतापूर्वक सद्गुरू के निर्देशों को स्वीकार कर आदर पूर्वक निष्कपट भाव से पालन करता है तो प्रयोजन तत्व बिना किसी अधिक प्रयास से सहज ही प्राप्त होता है। भजन प्रणाली का यह सब प्राथमिक अंग माना जाएगा। भजन से जुडे अन्य समर्थक गतिविधियों को भजन पुष्टिकारक अंग माने जाएंगे।

हरिनाम संस्कार

इस शीर्षक के अन्तर्गत हरिनाम संस्कार के विषय मे रोशनी डाली जाएगी। इस प्रक्रिया के दौरान सद्गुरूदेव "हरे कृष्ण" महामंत्र या हरीनाम को शब्द ब्रह्म (जुगल (राधा श्याम) का शब्द स्वरूप) स्वरूप में साधक को प्रदान करते हैं, जिसे कर्णों के माध्यम से साधक के हृदय पटल पर

स्थित किया जाता है। इसी प्रक्रिया को मुख्यत: नाम बीज आरोपाण का दर्जा दिया गया है। सद्गुरूदेव आजीवन काल तक आकांक्षी को प्रत्येक दिवस हरीनाम को मौखिक रीति से एक निश्चित संख्या के अनुरूप जपने का आदेश करते हैं। यह प्रक्रिया कर माला अथवा तुलसी माला की सहायता से किया जाता है।

दीक्षा

दीक्षा की प्रक्रिया जुगल सेवा प्राप्ति का एक निर्णायक अंग माना गया है। दीक्षा मंत्रों का संचारण सद्गुरूदेव अपने हृदय से साधक के हृदय मे कर्णों के द्वारा अथवा साधक के नेत्रों मे फूंक मारकर करते हैं। यह प्रक्रिया अत्यंत सूक्ष्म है जिसे सद्गूरूदेव अपनी संकल्प शक्ती मात्र से अंजाम देते हैं। इस शुद्ध गौड़ीय वैष्णव प्रक्रिया में अग्नि संस्कार अथवा आहुति का कोई समावेश नही है। यदि साधक प्रक्रिया के पूर्व पूर्ण रूप से सदगुरुदेव के चर्णों में समर्पित है तो इस अनुष्ठान से साधक या आकांक्षी की दिव्य दृष्टि विकसित होने लगता है और साधक के हृदय पर जमी पूर्व संस्कारों का विशुद्ध रूप से मार्जन हो जाता है। दीक्षा मंत्र दिव्य युगल (श्री श्री राधा कृष्ण) के संहिताबद्ध पहलू हैं। श्रील गुरुदेव के मार्गदर्शन में साधक द्वारा मंत्रों का मानसिक पुनरावृत्ति, सतत अभ्यास से, जुगल स्वरूप के गुण, रूप एवं धाम के मर्म को समर्पित साधक के हृदय पाटल पे उजागर करते हैं। हरी नाम एवं दीक्षा मंत्र, साधक श्री गुरुदेव के निर्देशानुसार अपने साधना क्रम में नित्य रूप से अनुसरण करता है। दीक्षा मंत्र के मुख्य रूप से दो विभाग हैं। पहले विभाग में मंत्रों के दो गुट हैं।

कुल १२ मंत्रों मे ६ मंत्र बीज कहे जाते हैं और शेष ६ मंत्रों को गायत्री कहे जाते हैं। इन मंत्रों का जाप मानसिक रूप से किया जाता है। निरंतर पुनरावृत्ति से यह मंत्र नवद्वीप लीला की सेवा में लगतें हैं जिनके द्वारा श्रीमन महाप्रभु एवं उनके नित्य परिकरों की सेवा की जाती है। मूल उद्देश्य इसका यही है की हृदय में सेवा भाव की वृद्धी हो। नवद्वीप, गोलोक वृन्दावन के आध्यात्मिक जगत का एक अभिन्न हिस्सा है। दूसरे विभाग में भी मंत्रों के दो गुट हैं। कुल १२ मंत्रों मे ६ मंत्र बीज कहे जाते हैं और शेष ६ मंत्रों को गायत्री कहे जाते हैं। इन मंत्रों का जाप मानसिक रूप से किया जाता है। निरंतर पुनरावृत्ति से यह मंत्र वृंदावन लीला की सेवा में लगतें हैं जिनके द्वारा जुगल एवं उनके नित्य परिकरों की सेवा की जाती है। मूल उद्देश्य इसका यही है की हृदय में प्रेम सेवा की अनुभूती हो। नित्य धाम सेवा केवल सद्गुरू सेवा एवं इन दिव्य मंत्रों के अनुरक्त सेवा से प्राप्त होती है। यह कहना अनुचित न होगा के श्रील गुरुदेव के पास ही इन मंत्रों के फलीभूत होने की कुंजी है। केवल श्रील गुरुदेव की परम दया से कोई साधक गोलोक वृंदावन के दिव्य मंडल में प्रवेश पा सकता है। यद्यपि केवल हरीनाम साधक को कुछ हद्द तक दिव्य अनुभुती दे सकता है परन्तु गोलोक रस की परम अभिव्यक्ति केवल परंपरा से जुडे एक भगवत प्राप्त वैष्णव सद्गुरू के अनुगत्य में ही हासिल किया जा सकता है।

सिद्ध प्रणाली उर्फ़ गुरु प्रणाली

यह एक अतिरिक्त विधि है जो श्री सद्गुरुदेव आत्मसमर्पित शिष्य के हृदय मे स्पन्दित करते हैं। नित्य लोक में शिष्य के अवधारित सिद्ध देह की अभिव्यक्ति श्री सद्गुरुदेव शिष्य के सम्मुख करते हुए उसे साधना के माध्यम से धारण करने की विधी का खुलासा करते हैं। इसी विधी को गौडिय वैष्णव जगत में मंजरी भाव साधना के नाम से जाना जाता है। यह साधना जब पूर्ण रूप से सिद्ध होता है तब साधाक स्वयं को दिव्य जगत में श्रीमती राधिकारानी की किंकरी रूप में पाता है। यही रूप गोपियों का है जो सारे भजन-साधन का पूर्णतम प्रयोजन है। भक्त इस प्रक्रिया के अनुसार गुरुदेव से एकादश भावों का गुण-संग्रह पाता है जिनमे मंजरी स्वरूप का नाम, आयू, निवास इत्यादी मुखिका का समावेश होता है। प्रारंभिक संस्करण में गुरुदेव साधक को केवल 3-4 मंजरी गुण-रेखा प्रदान करतें हैं , उससे जुडे अन्य विशेषताएं साधन-भजन के अनुरूप आकांक्षी के हृदय में अपने आप स्फुरित होतें हैं। सिद्ध प्रणाली दीक्षा के अवसर पर ही आकांक्षी को प्रदान किया जाता है।

सिद्ध प्रणाली की प्राविधिक दृष्टिकोण

मन का पूरण रूप से आध्यात्मिकरण सदगुरुदेव द्वारा दीक्षा स्थानान्तरण के समय, शिष्य के आत्मसमर्पण करते ही होने लगता है। जब भक्त विनम्र भाव से मन में ही दीक्षा मंत्रों का उच्चारण करता है, तब गुरू की कृपा के बल से दिव्यता मन के सारे परतों में व्याप्त होने लगता है

लगती हैं। मन के सूक्ष्मतम परत को चित्त कहा जाता है। यही चित्त आध्यात्मिक जगत का प्रवेश द्वार है। सद्गुरू द्वारा प्रदान किए गए दीक्षा मंत्र ऐसी कुंजी है जिसके माध्यम से चित्त परत का असीम परत खुलता है और कृपा के सहयोग से दिव्य जगत की पूंजी हाथ लगती है। इस प्रकार गुरुदेव दीक्षा के माध्यम से भक्त को दिव्य लोक से जोडतें हैं। सिद्ध प्रणाली एक विशाल संभावना मात्र है। जिस प्रकार भौतिक जगत में विचरण करने के लिए हमारे पास एक जड शरीर है, ठीक उसी तरह दिव्य जगत में प्रवेश करने के लिए एक नित्य दिव्य शरीर का प्रयोजन होता है। जब सिद्ध प्रणाली दिया जाता है(नरोत्तम ठाकुर महाशय द्वारा संदर्भ प्रेम भक्ति चंद्रिका) , उसके सिद्ध होते ही एक अव्यक्त आध्यात्मिक वाहन जिसे सिद्ध देह कहा जाता है उसका आगमन होता है, जो शाश्वत और अविनाशी होता है। गुरूदेव शिष्य के अनुरूप दिव्य जगत से ऐसे शाश्वत शरीर का चुनाव करते हैं। साधन-भजन, गुरू सेवा, वैष्णव सेवा एवं शिष्टाचार , सदाचार के सूत्रों से साधक अपने नैसर्गिक मृत्यू से पूर्व उस दिव्य चेतना एवं शरीर को प्राप्त कर लेता है जिसकी मौजूद्गी में ही वह नित्य धाम सेवा का अधिकारी बन सक्ता है।

श्रीमन महाप्रभु घटित साधन सूत्र के अन्तर्गत भौतिक जगत त्यागने के बाद साधक दो प्रकार के शरीर प्राप्त करता है; एक दिव्य और एक आध्यात्मिक शरीर। यह स्पष्टीकरण श्रीमान महाप्रभु गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के परम आंतरिक गूढ़ प्रक्रिया के रूप में उभर के आता है। आध्यात्मिक शरीर , साधन-भजन द्वारा ही इसी शरीर के आध्यात्मिकरण

द्वारा प्राप्त होता है। यह व्यावहारिक अनुभव है कि जब साधना श्री गुरुदेव के अनुगत किया जाता है (दीक्षा के बाद) तब आध्यात्मिक अनुभूतियों के तहत इसी जड शरीर का सहज रीती से आध्यात्मिकरण हो जाता है। यही आध्यात्मिक शरीर भक्त को हर सांसारिक लीला में प्राप्त होता है जब वह कुछ उच्च सेवा के लिए श्रीमन महाप्रभु की सेवा के अन्तर्गत किसी भूमंडल में प्रस्तुत होगा। यह वह स्थिति है जब साधक साधन सिद्ध हो जाएगा और उसकी गिनती श्रीमन महाप्रभु के नित्य परिकरों में शुमार होगा। उसका दूसरा देह मंजरी का होगा जो दिव्य होगा और उस शरीर से अनंत मात्रा मे उल्लासकारी जुगल सरकार की नित्य सेवा संभव होगा।

चेतना का गड़ना

श्रवणं, कीर्तनं, स्मरणं आदी नवधा भक्ति के विभिन्न प्रकार एक पूर्ण विकसित कृष्ण भावना के अवियोज्य अंग हैं। श्रवणं की प्रक्रिया हमारी चेतना को परब्रह्म के अनुनाद में आकार देता है। हरि नाम के दिव्य नादों का तात्पर्य मन तथा इन्द्रियों को विषयों से हटाकर ठाकूरजी के रूप, गुण एवं लीलाओं में लगाने का है। कीर्तन की प्रक्रिया इन्द्रियों को ठाकुरजी की सेवा में अधिकतम लगाता है खासकर जिव्हा को। यह प्रक्रीया क्षुदा एवं निराधार वाक शक्ती खर्च होने से रोकता है और मन बुद्धी को आत्म चिन्तन की ओर बढाने में सहायक बनता है। हरि नाम के समय मन एवं अन्य इन्द्रियाँ उसके दिव्य नाद से जुड़कर बाध्यकारी प्रवृत्तियों से मुक्त होकर एक उच्चतर प्रज्ञा के अन्तर्गत कार्यान्वित होतें हैं। परन्तु सतत अभ्यास के बाद सद्गुरूदेव की कृपा से यही हरि नाम मन एवं बुद्धी को एक अग्रवर्ती अवस्था में पहंचाता है जब श्री कृष्ण का ध्यान सहज होने लगता है और अन्त:करण विकार रहित हो जाता है। उसके अगले पड़ाव पर मन ठाकुरजी के नित्य लीला स्मरण मे रमने लगता है। यही स्थिती जब भजन प्रणाली से चरम सीमा तक पहुंचाया जाता है तब साधक शरीर त्यागने से पुर्व ही जुगल सरकार के नित्य लीला मे प्रवेश कर जाता है। यही नित्य सेवा प्राप्ती का स्वरूप है। सद्गुरु कृपा और आशीर्वाद के प्रावधान में जब मन के संकाय से साधक लगातार हरीनाम का श्रवण एवं

कीर्तन करते हुए भजन में प्रवीण हो जाता है तब भगवत सेवा प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।

स्मरणं की प्रक्रिया को अब विस्तार से देखा जाएगा। पहले चरण में साधक को स्मरणं धीमी गति से और रुक रुक के होता है। ठाकुरजी का स्मरण दिन में यदा-कदा ही होता है। निरंतर अभ्यास से यह ठाकुरजी का विचार प्रवाह अनवरत चलता है। परन्तु यह क्रिया कृपा एवं सेवा वृत्ती पर ही मुख्य रूप से निर्भर है। निरअपराध प्रयास से स्मरण की गुणवत्ता अधिक गहरी और जीवंत हो जाएगी । धीरे धीरे जड-बुद्धी का बल क्षीण पडता जाएगा और भजन रुचिकर लगना प्रारंभ हो जाएगा। यही शुद्ध भजन वृत्ती का परिचय है। इसी वृत्ती के अनुरूप विगत कर्म-फल कमजोर एवं निष्क्रय हो जाते हैं।

स्मरण के तीन मुख्य घटक हैं। वे हैं स्मरण की प्रायिकता,स्मरण की कालावधि एवं स्मरण की गहराई। चूंकि गौड़ीय वैष्णव गण राधा दास्य में बंधे होते हैं, स्मरण की प्रक्रिया भी इसी भाव के अनुकूल फलित होता है। स्मरण के दौरान साधक स्वयं को श्रीजी के किंकरी रूप में समर्पित करते हुए सेवा प्राप्ती की अभिलाषा करता है। यही स्मरण का निपट मुख्य अंग माना गया है। महामंत्र या दीक्षा मंत्र जप के समय के दौरान यह ध्यान बहुत उपयोगी है जिसकी रूप रेखा श्री गोविन्द लीलामृत नामक ग्रन्थ में वर्णित है। यह रूप रेखा नित्य लीला में ठाकुरजी के अष्ट कालिय लीला के अनुगत है, जिसमे साधक स्वयं को श्रीजी की सेविका के रूप में सम्मिलित करते हुए लीला राज्य में प्रविष्ट होने की वृत्ती को अती

जतन एवं लोभ से कार्यान्वित करने की चेष्टा करता है । किन्तु इस प्रक्रिया का फल वह गुरू सेवा एवं अपने निष्कपट भाव के अनुरूप ही पाता है। व्रज मंडल की श्रीजी (श्रीमती राधिका),ठाकुरजी के मुकाबले कई गुना अधिक करुणामई एवं कृपालु मानी जातीं हैं। स्मरणं की एक विशिष्ट विधि नीचे चित्रित किया गया है।

"रूप मंजरी , अनंग मंजरी नामक श्रीजी के नित्य परिकरों कें कारुण्य स्वरूपों पर ध्यान करते हुए उनसे श्रीजी के नित सेवा का प्रसाद पाने की, मैं _____ मंजरी, अभिलाषी हूं। मैं कई बार नित्य सेवा के अनुरूप स्वयं को श्रीजी की परम सेविका मानती हुई , अपने सद्गुरुदेव से प्राप्त किए हुए एकादश भाव के अनुसार , उस रूप में सजते हुए, गुरु मंजरी के आदेश से श्रीजी के असीम कोमल चरण-कमलों के निकट स्वयं को कार्यान्वित पाती हूं। मैं विचारपूर्वक, सदा नेत्रों को खुली या बंद अवस्था में जुगल के मृदुल आचरण के अमृत रसपान को लालाईत हूं। मैं यह देख रही हूं के श्रीजी से मेरा सटाव क्षण क्षण निखरता जा रहा है। मेरा एक मात्र उद्देश्य यह है की अपने हर सेवा के प्रभाव से मैं श्रीजी का स्नेहपात्र बनती जाऊं।

वैष्णव स्वरूप में, मैं यह प्रण लेता हूं के मै सद्गुरू सेवा, श्रीमन महाप्रभु के अकारण अनुकंपा एवं उच्च कोटी वैष्णव आचरण से श्री गुरु मंजरी की अपार दया पात्र बनकर अपने दिव्य जगत के स्वरूप की ओर श्रीजी का प्रेममयी ध्यान आकर्शित करूंगा। यह धारणा भी केवल मेरे परम प्रेममयी सद्गुरुदेव का प्रसाद है"।

जप का सार

जप (दोनों दीक्षा और महा मंत्र जप) का लक्ष्य है "कृष्णा सेवा प्राप्ती", यह पिछले वर्गों में स्पष्ट है। हालांकि यह लक्ष्य आध्यात्मिक यात्रा के प्रारंभिक अवस्था में ही हासिल नहीं होता।

भक्ति यात्रा में कई मध्यवर्ती पड़ाव मिलते हैं जिनके अनुभूति में साधक अपने अंतरंग हृदय परिस्थिती को भांप सकता है और आगे बढने के लिए प्रेरित होता है। इसके अनुरूप ही भक्त यह जान जाएगा की वह नित्य सेवा प्राप्ति के कितने करीब या दूर है। विचार के इसी अवस्था में साधक मानवीय सोच के सुक्षतम स्तर में पहुंच जाता है और सामन्य, व्यावहारिक ज्ञान बुद्धी एवं तर्क से पार होकर दिव्यता के क्षेत्र में प्रविष्ट होता है। इसी स्तर का दूसरा नाम आत्म बोध कहा जाएगा। साधक प्रतिबद्धता और आत्मीय लगन से पवित्र एवं निरपराध रूप से हरी नाम , मंत्र जप करता है तब विचार एवं भावनाएं परिशोधित होकर दिव्यत्व प्राप्त करते हैं। अन्तर-मन का यह स्वरूप जडता से परे का होता है जहां जीवन मूल्य पूर्ण रूप से परिष्कृत होकर साधक को सत्य का दर्शन कराते हैं। इसका यही प्रयोजन है की साधक स्वत: को अपने परीवार, कर्म क्षेत्र, दृष्यमान संसार एवं अपने तथाकथित कल्प्नाओं के परे पाता है। संक्षेप में वह स्वयं को अंतिम वास्तविकता के कतार में अनुभव करने लगता है। यही स्थिती परम निर्मलता का परिचायक होगा। इस तरह के विचारों को आरोपित नहीं किया जा सकता, लेकिन महसूस आवश्य किया जा सकता

है। अपने हृदय में दीनता धारण कर, सेवा का एक मात्र अभिलाषा करते हुए जब साधक हृदय हरी नाम , मंत्र से हृदय मन्थन करता है तब हृदय से करोडों जन्मों से संचित पाप एवं अपराधों का लौहमल वाष्पित हो जातें हैं। एसे भजन प्रक्रिया से ही हमारी मूल आध्यात्मिक प्रकृति विचारों और भावनाओं के दूषित मन दायरे से बाहर उभर आ पाती है। ऐसी ही स्थिती में साधक कृष्ण से भावनात्म रूप से जुड पाता है एवं सांसारिक तर्क से परे हर विषय को सहज रूप से देखता है।

जब मन एसी अवस्था में पहुंचता है, तो एसे दिव्य मन को "आध्यात्मिक मन" भी कहा जा सकता है। ऐसा मन अत्यंत रहस्यात्मक है। यह मन साधक को कृष्ण-वृत्ति से अवगत कराता है।ऐसा मन कृष्ण ज्ञान से परिपूर्ण होता है और चित्त का वास्त्विक स्वरूप उजागर करता है। भक्ति युक्त ज्ञान की निर्मल धारा का स्रोत ऐसा ही मन है जो आत्मा का स्वच्छ दर्पण है। सद्गुरु कृपा से जब ठकुरजी से संसर्ग अति-गहन हो जाता है तब साधक को अपनी ही आध्यात्मिक भविष्य की सटीक दृष्टी प्राप्त हो जाती है। "चित्त" का शुद्ध स्वरूप साधक के तीव्र आध्यात्मिक यात्रा के लिए बेहद सहायक हो जाता है और उसके परिशुद्ध प्रभाव से आसपास के भौतिक संसार में भी परिवर्तन प्रकट करता है। इस चित्त अवस्था को प्राप्त करने के लिए साधक को पर्याप्त प्रयास शील होना अनिवार्य है। जीवन की हर प्रक्रिया को मंत्रमयी बनाकर हर पहलू मे जैसे खाना, पीना, उठना, बैठना आदी कर्यों में भी साधक को भजन शील होना लाजमी है। ऐसे अटूट लगन और प्रयत्न का फल ही सेवा प्राप्ति हो

सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सद्गुरुदेव आदेशानुसार एक न्यूनतम संख्या का मंत्र जाप का संकल्प साधक अपने दैनिक जीवन में लाए। जो व्यक्ति गण जीवन व्यापन के लिए कार्यालयों में काम करते हैं या जो लोग व्यवसाय करते हैं वो स्वाभविक तौर पे जीवन संचालन के लिए अन्य गतिविधियों पर ध्यान बनाए रखने के लिए अधिक चिंता नही करते। सारी व्यवस्था दरसल अपने हीं आंतरिक संविधान पर निर्भर है। मानवीय मन की अपार क्षमता है, केवल यही है कि हम उसके अपरिमित क्षमता से अनभिज्ञ हैं !! इसी मन की क्षमता गुरू मंत्र उपयोग में लाता है। जिस तरह धनुर्धर अर्जुन अपनी निगाह शुक के नेत्र पर करता है उसी तरह जब दीक्षा विधी के अनुरूप मन केन्द्रित हो जाता है, मंत्र जाप, साधक के भीतरी व्यक्तित्व को उजागर करते हुए मन के सूक्ष्म आयामओं का पता चलता है। पूरे ब्रहमाण्ड की छवि दरसल व्यक्ती के मन में ही दिखाई पडता है। बाहर तो वास्तव में कुछ है ही नही। जब शरीर से एक फुट की दूरी पर कोई वस्तु देखा जाए तो यह दूरी का अनुभव वास्तव में केवल मन-बुद्धी के परतों का है । यह दूरी का अनुभव पूर्णत: आंतरिक है। कोई यह निश्चित बता नही सकेगा की कुछ बाहर भी है। कोई अगर यह कह दे की आत्मा हृदय के मध्य में स्थित है तो यह बात केवल सुना या पढा हुआ हो सकता है, किसी और के अनुभव के आधार पर परन्तु यही बात हमारे प्रत्यक्ष अनुभव के बाहर की वस्तु होगी।

यह भुमिका का यही तात्पर्य है की पूरी दुनिया की सच्चाई हमारी चेतना द्वारा ऊर्जायुक्त मन, बुद्धि एवं अहंकार से प्रभावित अनुमान की "धारणा" मात्र है और कुछ नही। सत्य की खोज इसी कारण वश सत्पुरूष एवं अमोघ शास्त्र की सहयाता से भक्ति मार्ग पर अग्रसर होकर की जाती है। सद्गुरु आश्रय में नाम जप करने का यही प्रारंभिक प्रभाव होता है की जो अनंत जन्मों से घटित वो "विशाल काल्पनिक विस्तार" विसर्जित हो जाता है। संसार का वास्तविक स्वरूप अब साफ़ दिखाई पडता है। जब कोई विनम्र एवं सहनशील भाव से मंत्र एवं नाम करता है तब मन से सारी अवास्तविक धारणाएं स्वाभाविक रूप से पिघलने लगतीं हैं। यही मिथ्या धारणाएं हमको ईश्वर एवं उनके अगाध स्नेह से वंचित रखती हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर अपना ही एक ब्रह्मांड चलायमान रखता है। व्यक्ति ब्रह्मांड की अपनी ही अवधारणा के अनुरूप चलता है । साथ साथ समय समय पर अपने सीमित सोच के मुताबिक यह अवधारणा का स्वरूप भी बदलता रहता है। यह जरूरी है की सभी तरह के कथित विचारों का शमन हो ताकि उसके अस्त पर परम सत्य का उदय हो सके अन्यथा दृष्टी बाधित हो जाएगी।

इस माया (सांसारिक भ्रम) का इन्द्रजाल है। इस इन्द्रजाल में कैसे कोई पार लगा सकता है। सत्य का चेहरा माया के इस प्रभाव में कैसे नजर आ सकता है। यह विकट माया केवल एक सदगुरु, जो कृष्णमयी हो, एसे आचार्यश्री के चरणों में आत्मसमर्पण द्वारा भंग किया जा सकता। कोई साधक उच्च गुणात्मक एवं मात्रात्मक तरीके से , सद्गुरुदेव के चरणों में

समर्पित होकर ,मंत्र साधन एवं भजन करेगा तब बुरी तरह से निर्माण किया हुआ उसके भीतर का संसार स्वत: भंग होगा। जब यह काल्पनिक संसार की दीवारें पिघलने लगतीं हैं तब श्री कृष्ण एवं उनके नित्य धाम की वास्तविक्ता चेतना में धीरे धीरे उतरने लगती है। संसार संबंधी सारा तथाकथित हमारी सोच, पसंद, नापसंद, सम्भाव्यता, लौकिकता सब हवा हो जाएंगी। हम किसी भी पूर्व योजना के बिना पल पल के आधार पर, केवल सद्गुरु एवं कृष्ण के बलबूते पर जीना सीख पाएंगे। यही सही मानों में संपूर्ण जीवन है। फिर भी अंत में समर्पण, साधना एवं गंभीरता पूर्वक भजन के बिना इस डरावने आव्यूह से कोई अबद्धता संभव नहीं।

दुर्बोध जप

नाम का निरअपराध जप एक परम दिव्य प्रक्रिया है। जब श्री कृष्ण का पवित्र नाम जप एवं संकीर्तन के माध्यम से मन में भाव निवेष किया जाता है तब उसका अनन्त "वैज्ञानिक परिणाम" निकलता है। हमारा मन विचारों और भावनाओं से बना है, यही समूह चेतना के संसर्ग हमें इस भौतिक संसार का अनुभव देता है जो सभी पिछले और वर्तमान जीवन काल में हमारे सभी पिछले इरादों और कार्यों के कुल योग पर आधारित है। जप ऐसा दिव्य उपकरण है जो हमें गोपी भाव" (वृन्दावन के गोपियों के उच्चतम भाव) के "सर्वोच्च" अनुभव दे सकता है। मंत्र जप के दिव्य स्पंदन हमारे, चेतन, अवचेतन एवं अचेतन मन के परतों को भेदकर सूक्ष्म लोकों के रास्ते दिव्य लोकों तक तरंगे भेजतीं हैं जब विधि अनुसार जाप को लगातार किया जाता है तो तरंगों का एक उच्च कताई का भंवर हृदय में लिप्त लौहमल को धो देता है और विश्व के प्रती सारी गलत धारणाओं का विसर्जन होता है। हमारी चेतना में इस प्रकार से शुद्धिकरण की प्रक्रिया शुरू होति है।

शुद्धिकरण के दौरान चेतना से जुड़े बहुत से अन्य प्रक्रियाएं कार्यान्वित होतीं हैं। भयानक स्वप्नों का सिलसिला इसी शुद्धिकरण के व्यवस्था क्रम से जुडी प्रक्रिया है। यह स्वप्न इतने भयानक होते हैं की कभी कभी रात में कई बार नींद खुल सकती है। इसका यह तात्पर्य, प्रच्छन्न रूप से अन्त:करण पे मुद्रित कई जन्मो के जडजागतिक विचार, भावनाएं,

निष्ठाएं और ऐसे अन्य कई आंतरिक स्थितियां का अनावरण ही है। सद्गुरु समर्पण एवं भजन प्रणाली कुछ ऐसी गतिविधियों के माध्यम से हृदय को माया-मुक्त करती हैं। इस प्रक्रिया का यह भी एक रूप हो सकता है की शुद्धिकरण के दौरान परिवार के सदस्यों के प्रती अनायास लगाव महसूस करना , जैसे बिना कारण ही ऐसा लगना के वह हमसे दूर हो रहे हों, यह भी अनुभव में आ सकता है। जब मंत्र जाप तीव्र एवं शिद्दत से होने लगता है उस समय भविष्य का ज्ञान भी कुछ हद तक होने लगने लगता है। इसका यह भी एक अर्थ निकल सकता है की कुछ सिद्धियां प्राप्त हो रही हैं। किन्तु यह सब स्थितियां मध्यवर्ती माने जाएं और ऐसी स्थितियों को भक्ति से जोडा नही जा सकता है। अंतराल के कई ऐसी स्थितियां भक्ति के अंतिम प्रयोजन से ताल्लुक नहीं रखतें। भजन का मूल तात्पर्य यह है की हृदय में जमी गलतफहमियां दूर हो जाएं और जीवन का वास्तविक स्वरूप सामने प्रस्तुत हो जहां भगवान, जीव, वैष्णव, साधक, गुरू, कृपा, साधना एवं परम-प्रय़ोजन की अनुभुती प्राप्त हो। इसी से अंत मे साधक मंजरी स्वरूप प्राप्त कर जुगल नित्य सेवा को प्राप्त करता है। यही श्रीमन महाप्रभुजी का कलियुगी जीव के निमित्त, सर्वोत्त्म उपहार है। महामंत्र एवं दीक्षा मंत्र विह्वल कारी है। यह एक अनुभवात्मक सच है। लगातार निष्कपट मंत्र जाप से मनुष्य प्रकृति पर अद्वितिय प्रभाव पडता है। कुछ लोगों पर यह असर प्रारंभ में महसूस नहीं होता परन्तु नित्य जाप से व्यक्तित्व परिवर्तनशील हो जाता है और एक नया व्यक्तित्व उभर के आता है। भावना एवं निष्ठा से मिश्रित मंत्र जाप इतना प्रभावकारी होता है की स्वयं ठाकुरजी ऐसे भक्त से संपर्क

रखते हैं। जब भक्त ईश्वर गुरु को ही सर्वस्व मानकर भजन में लगता है तो व्यक्ति के मायिक व्यक्तित्व का विसर्जन होता है। ठाकुरजी केवल ऐसे मूर्तियों से आदान-प्रदान करते हैं जो उनके लिए विक्षिप्त हैं। यही भक्ति भावना का मूल सिद्धांत है। प्रयोजन के बिना भक्ति की कोई दिशा नहीं। शास्त्रों का कहना है कि नाम और नामी अभिन्न है। शास्त्र की वाणी पर विश्वास होना बहुत अच्छी बात है मगर शास्त्र का वासत्विक अनुभव एवं शास्त्र का केवल सैद्धान्तिक ज्ञान होना दो अलग वस्तु हैं। वैष्णव एवं गुरु के अनुभवों को जब साधक वास्तविक्ता के कार्यक्षेत्र में उतारकर अपनी जीवन शैली को परिमाणित करता है तब वह वैष्णवता को प्राप्त होता है और शुद्ध भक्त कहलाता है। उसका दृष्टीकोण तब जाके परिपक्व बनता है और वह साधन सिद्धि की ओर अग्रसर होता है। भक्ति, वास्तव में हमारे स्रोत, श्री कृष्ण के प्रति हमारे दीवानेपन का नाम है और यह केवल जीव के वस्तुगत परिस्थितीयों से उत्तीर्ण होने के पश्चात पूर्णता को प्राप्त होती है।

साधु संग

वैष्णव जीवन शैली का प्रमुख अंग "साधु संग" है। साधु संग से रहित होकर जीव चाहे कोटि जन्मों तक मंत्र जाप एवं भक्ति के अनेक उपक्रम कर ले उसकी परिस्थिति में कोई बदलाव संभव नही। भक्ति के वास्तविक प्रक्रिया का मुख्य अंग साधु संग के लिए भगवान से प्रार्थना करना, इसे माना जाएगा।

जब ऐसी प्रार्थना निष्कपट भाव से की जाती है तब ईश्वरि कृपा से उत्त्म साधु संग का लाभ मिलता है। उत्त्म साधु वही होते हैं जिनका एक मात्र काम भगवत आराधना है, जो वस्तुगत चेतना से परे है जिनमें ईश्वर तृप्ति के अलावा और कोई मोह ना लोभ बचा हो। साधु संग का लाभ लेते लेते भक्त को उनकी अनुकंपा से सद्गुरु प्राप्ति होती है। सद्गुरु वह है जो शास्त्र का निचोड अपनी जीवन शैलि बना चुका हो, जो नैतिक्ता का प्रतिक हो, जो अपनी ही परंपरा की सेवा एवं कृपा के फलस्वरुप गोविंद को प्राप्त कर चुका हो। जब साधक गुरु के प्रति अपने समर्पण, सेवा एवं निष्कपट भजन के द्वारा गुरु के हृदय को प्रभावित करता है तब सद्गुरुदेव शिष्य के हाथों में आध्यात्मिक जगत की कंजी थमा देते हैं।

जब साधक इस तरह गुरु के अनुगत होकर भजन करता है तो गोविंद स्वयं को भक्त के सामने प्रकाशित करते हैं। यह सदाशयी प्रक्रिया है। आज की समस्या यह है की कोई निजी स्वार्थ को छोडकर भगवत प्राप्ति के

हतु से न कार्यान्वित होता है और ना कोई सच्चा साधु का संपर्क सहज प्राप्त होता है। यह सारा प्रामाणिकता, निष्कपटता एवं शुद्ध भावनाओं का क्षेत्र है। अगर जीव के हृदय मे भगवत लोभ खरा होगा तो उसके ही फल स्वरूप आगे के सारे मार्ग गोविंद उसी भावना के अनुरूप खोल देते हैं। यही भक्ति मार्ग का रहस्य है। मार्गदर्शन, प्रेरणा और शुद्ध भक्तों के प्रोत्साहन के बिना भक्ति में प्रगति संभव नहीं है।

धाम भक्ति

पवित्र धाम वह आध्यात्मिक "ऊर्जा" क्षेत्र है जहां भक्ति देवी समृद्ध होती है। गौड़ीय वैष्णवों के लिए कुछ चयनात्मक ऐसे स्थान हैं जो भक्ति के संसर्ग में प्रमुख हैं जो भक्ति के उपलक्ष में श्री श्री राधा कृष्ण के शाश्वत सेवा प्राप्त करने में मदद्गार हैं। पवित्र धाम " सेवा प्राप्ति" के भाव का प्रतिनिधित्व करता है। रागानुगा भजन श्रीमती राधारानी के शाश्वत दासत्व प्राप्ति की अनुपम प्रक्रिया है।

रागानुगा भजन पद्धति में साधक नित्य लोक में श्रीमती राधारानी के दासी के रूप में सेवा प्राप्त करने का अभिलाषी है। इस कारण वश साधक उन स्थानों से जुडना चाहता है जो श्रीजी को अतिप्रिय है। निस्संदेह ही श्री वृंदावन धाम ऐसा स्थान हैं जहां साधक श्री राधा दास्य सेवा प्राप्ति का प्रसाद पा सकता है क्योंकि वृंदावन धाम ही श्रीजी के प्राण हैं। जब साधक सेवा प्राप्ति के तीव्र मंशा से वृंदावन धाम में भजन करता है तब इसी भौम वृंदावन की कृपा से साधक गोलोक वृंदावन की लीलाओं की तरफ़ आकृष्ट होगा। धाम सेवा के समय भक्त को धाम अपराधों से बचना होगा और धाम देवताओं को सम्मान देना होगा। अगर यह सतर्कता भक्त नही रखता है तो धाम अपराध हो सकता है। धाम वासी एवं वहां के संत यही धाम देवता हैं। धाम को हमेशा भक्त को कुलीन नजरों से देखना चाहिए तथा हर समय़ उसका हृदय से पूजा करनी चाहिए।

नवयुग में भक्ति

श्रीमन महाप्रभु के अनुसार हमें भक्ति के माने जानना होगा ताकि हम सटिक तरीके से भक्ति का अनुसरण कर सके। सरल भाषा में जब कोई सेवा कृष्ण प्रीति के लिए करता है तब वह क्रिया सेवा भक्ति का स्वरूप ले लेता है। हालांकि यह विचारधारा जब इन्द्रिय प्रीति के दोष से कुंठित हो जाता है तब जीव इस सोच को श्री कृष्ण पर आरोपित करके उसकी यही भावना स्वार्थपरायण हो जाती है।

भक्ति प्रक्रिया में भक्त अपने इन्द्रिय़ों को ठाकुरजी को समर्पित करते हुए २४ घंटे मन-मंदिर में ठाकुरजी की आराधना करता है। दुर्भाग्य वश प्रचलित कृष्ण धारणाओं में मानस-पूजा की विधी अधिकतर चर्चित नहीं है। मानस-पूजा यह सनातन धर्म की सबसे पुरातन एवं उदात्त वैदिक संपदा है जो साधन भक्ति का अकृत्रिम अवलंबन है। कलियुग मन मस्तिष्क का सबसे प्रदूषक युग है। गौडिय वैष्णव आचारयोंने (आध्यात्मिक विशेषज्ञों) इस प्रदूषण का ध्यान रखते हुए भक्ति सेवा के विभिन्न विधियों का प्रचालन किया है। इन विधियों का तात्पर्य यह है कि जो भक्त गण ठाकुरजी की सेवा में प्रगाढ़ हैं वे अपने इन्द्रिय़ों तथा इन्द्रिय विषयों को मन से ठाकुरजी को समर्पित करते हैं इस धारणा के साथ कि "हे प्रभु मै यह त्याग एवं समर्पण आपके प्रीति के लिए कर रहा हूं ताकि आप मेरे आचरण से संतुष्ट हों। इस सेवा के एवज में आप मुझे अपने दास के रूप में स्वीकार करें और वेतन की शकल में अपनी चरणों

की भक्ति प्रदान करे"। यह संवेदनात्मक भाव जब भक्त अपने हृदय में सदा धारण करता है तब वह भाव भक्ति का प्रवर्तक बनता है अन्यथा भाव रहित भक्ति क्रियाएं केवल आडंबर बनके रह जाती हैं। कलियुग के आगमन से ही आदम लीद-लिप्त है। उसके कार्य अशुद्ध हैं। कलियुग में भक्ति, मानव के शुद्धिकरण का एक मात्र जरिया बन के रह गया है। जब मनुष्य अपने मन को विकारों सहित ईष्वर को समर्पित करता है तब उसके नेकनीयती का ध्यान रखते हुए इश्वर उस मनुष्य का हृदय मार्जन करतें हैं और उस मनुष्य का आध्यात्मिक जगत में आगमन होता है। हालांकि हम देखते हैं कि आजकल लोग भक्ति सेवा भी प्रतिष्ठा की आड में करते हैं। भक्ति भी प्रदर्शनकारी बन के रह गया है। अनेक वर्ष भक्ति अनुचरित रहने के पश्चात भी भक्तों का हृदय कठोर का कठोर ही है केवल परिधान में परिवर्तन देखा जाता है। सेवा भक्ति का मुखौटा पहन कर लोग वही वस्तुगत जीवन व्यापन कर रहे हैं। श्रद्धालुओं के बीच अहंकार का टकराव एवं भक्ति सेवा में अनुचित प्रतिस्पर्धा का कुभाव पाया जाता है। यह वास्तव में हास्यास्पद है। अगर यह सब देखा जा रहा है तो सेवा भक्ति की अवधारणा में कोई गंभीर तृटि आवश्य है। भक्ति का अगर एक लोकप्रिय आंदोलन किसी का हृदय इश्वरी प्रेम से द्रवित नही कर सकता तो ऐसा आंदोलन किस काम का ? जहां भक्त बनाने की होड, संप्रदाय के सिद्धान्तों से अधिक मूल्यवान हैं, जहां वैष्णव सदाचार और वैष्णव प्रतिष्ठान के मुकाबले संस्थानिक प्रावधान अधिक माने रखतें हैं, तो क्या यह भक्ति कि सही दिशा है?

स्वतंत्र इच्छा

शास्त्रों का प्रचार है कि जीव के पास अणु मात्रा में स्वतंत्र इच्छा है जिसके चलन में ईश्वर हस्तक्षेप नहीं करते। हालांकि भौतिक जीवन आशय में यही मानवीय स्वतंत्र इच्छा सब से ज्यादा माने रखता है। गीता प्रतिपादन के बाद भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से यही कहते हैं की धर्म के विषय में जो भी शास्त्र युक्त बातें थीं उनका मार्मिक अवलोकन भगवान ने अर्जुन के सामने प्रस्तुत किया , यह अब अर्जुन के उपर निर्भर था कि वे उनके स्वतंत्र इच्छा के अनुरूप निर्णय करें। क्या वह सर्वशक्तिमान ईश्वर अर्जुन को नियंत्रित करने में सक्षम नही थे? क्या वे अपने अपार शक्ति का उपयोग करते हुए अर्जुन को प्रभावित नही कर सकते थे? सारे तर्क सामने रखते हुए भगवान ने कर्म का दायित्व अर्जुन के स्वैच्छिक निर्णय पर छोड दिया।

एक साधारण जादूगर भी अपने साधारण वशीकरण शक्तियों के प्रभाव से जनसाधारण को नियंत्रित कर सकते हैं, तो परम शक्तिमान परब्रह्म परमेश्वर श्री कृष्ण के क्या कहने। फिर भी भगवान जीव मात्र को यह स्वतन्त्रता देते हैं की वह स्वयं अपना संचालन करे बिना भगवान के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के। यही मानवीय इच्छा शक्ति का परिमाण है। मानवीय स्वतंत्र इच्छा शक्ति का परिवेश भगवान द्वारा मनुष्य जाति को प्रदान की गयी बहुमूल्य भेट है। जब इस शक्ति का भौतिक जीवन में प्रचलन होता है तब अराजकता के अलावा उसका और कोई परिणाम नहीं

निकलता। यही शक्ति मनमानी की शकल इख़्तियार करता है। स्वतंत्र इच्छा शक्ति की अनुपम भेंट हमें इसलिए दिया गया के हम उस शक्ति का प्रयोजन इश्वर प्रेम विनियम में लगा सके। परन्तु इश्वर हमें इस धारना में बाध्य नही रखते। जब प्रेम के आदान प्रदान में स्वच्छंदता होती है तब रसास्वादन मिलता है। यही भगवत प्रेम रसास्वादन शास्त्रानुसार स्वतंत्र इच्छा शक्ति का अंतिम प्रयोजन है। अगर ईश्वर हमें स्वच्छंद इच्छा शक्ति प्रदान नहीं करते तो जीव और ईश्वर के बीच रसमय प्रेम संबंध कैसे स्थापित होता? यह तो स्वाभाविक है कि दो मूर्तियों के बीच बाध्यकर प्रेम संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता।

जब स्वच्छंद इच्छाशक्ति माया के प्रावधान में लगाया जाता है तब मानवीय अभिमान का विकास होता है जो विध्वंसक साबित होता है। जो व्यक्ति इस प्रकार स्वच्छंद होता है तब वह भक्ति प्रावधान से दूर हो जाता है। भक्ति से दूर रहने के लिए वह अनेक प्रकार के बहानेबाजी करता है। ऐसा जीव स्वाभाविक तौर पे इन्द्रिय तृप्ती के पीछे दौड लगाता है। किसी सुकृति वश भक्ति से जुडने के बावजूद ऐसा व्यक्ति अपनी कपटता से बाज नही आता। भक्ति का प्रयोजन तब ही फलकारी साबित होता है जब साधक यथार्थ भाव से अपनी स्वच्छंद इच्छा शक्ति को सद्गुरु एवं भगवान के चरणों में समर्पित करता है। इस सरल प्रक्रिया में हृदय का संदूषण एवं उसका संदूषण रूपी दुर्बलता ही समर्पण का रोधक बनता है। ऐसी परिस्थिति ही जीव को माया की गोद में असुरक्षित रखता है। ऐसा जीवन दिव्य रोमांच से रहित , ठोस लाभ से वंचित एक चक्रीय

रीति में चलायमान रहता है। ऐसे बोझिल निरस और कर्म-बाधक जीवन से छुटकारा केवल इश्वर सेवा के माध्यम से हो सकता है और इश्वर सेवा केवल अपने समस्त इच्छाओं को सद्गुरु एवं ईश्वर के सुपुर्द करने पर ही संभव है। हालांकि भगवान ऐसे अवसर प्रदान करतें हैं वह जीव को जो किसी भी प्रकार बाध्य नही करता। यही ईश्वर की नेकदिली है।

टालमटोल

टालमटोल की मन:स्थिति एक आत्म-पराजयक आदत है। विशेष रूप से भक्ति के क्षेत्र में, टालमटोल एक जहरीला खरपतवार है जो भक्ति लता को सुखा देती है। आलस्य और जड़ता टालमटोल नामक सर्प के दो जहरीले दांत हैं। जब जीव भक्ति के इरादे से प्रभु के चरणों में समर्पित होना चाहता है तब माया अपने जाल में फांसती है और यह जाल है मन के टालमटोल प्रवृत्ति का। भक्ति से प्रेरित भक्त को ठाकुरजी योगमाया के सहयोग से प्रेरित करते हैं। जब भक्त इस मार्ग पे निकल पडता है तो दूसरी ओर लोक-लज्जा की मान्सिकता हावी होने लगता है।

अगर मन में यह साधारण सी बात आती है के क्यों ना कृष्ण मंदिर चला जाए तो मन में तुरंत ही यह विपरीत विचार भी आने लगेगा की क्यों ना यह काम पूरा कर दिया जाए या क्यों ना थोडा आराम किया जाए उसके बाद मंदिर चला जाए। अगर धाम दर्शन की लालसा मन में अंगड़ाइयाँ लेता है तो दूसरी और यह भी विचार आता है की इस भ्रमण का यत्न पूर्ववत करना पडेगा या कार्यालय में महत्वपूर्ण बैठक है या अगले वर्ष के लिए यात्रा स्थगित करना पडेगा। मन यही बहाने बनाता है कि सब कुछ अगर ठीक रहे तो धाम यत्रा की जाए। यही सोच दरसल टालमटोल का जड है।

यहाँ तक कि हरि कथा के दौरान घर या कार्यालय से जूड़ी महत्वपूर्ण सांसारिक काम मन में दस्तक देते हुए मन को हरि कथा से विमुख

करती है। यही भक्ति के प्रति मन का टालमटोल है। हमें यह समझना चाहिए कि यह टालमटोल केवल माया का आक्रामक रूप है। भक्ति सेवा के ऊपर वस्तुगत गतिविधियों की वरीयता कई प्रकार से देखने को मिलता है। इसी संदर्भ में प्रभु-मिलन की देरी सिद्ध होती है। ऐसी प्रवृत्तियां भजन की संभावनाओं को सीमित करते हैं।

भजन संबंधी सारे रचनात्मक एवं पुष्टिकारक विचारों को ठाकुरजी की प्रत्यक्ष प्रेरणा माननी चाहिए। इस विषय में भक्त को एक योग्य शिक्षा गुरु के मार्गदर्शन में रहना चाहिए। जब साधक भक्ति योग में प्रवीणता की तरफ बढ़ता है तब उसके विचारों का सटीक अनुमोदन एक योग्य गुरू द्वारा होना चाहिए। वह चाहे शिक्षा गुरु हों या दिक्षा गुरु। यह प्रक्रिया दीर्घ काल तक चलना अत्यंत आवश्यक है। धारदार बुद्धिमानी उसी को कहा जाएगा जब कोई अपना तन मन और धन पूर्ण रूप से समर्पित कर दे। टालमटोल की परेशानी तब आति है जब भक्त सद्गुरु भगवान की तरफ़ पूर्ण रूप से शरणागत नही होता। जहां मैपन का कुच्छ हिस्सा भक्त अपने पास रख लेता है तब सारी अदृढ़ता नजर आने लगती हैं। भजन एक हार्दिक भावना का विकास है जो भगवान को सहज रूप से मानस-सेवा द्वारा आकर्षित करता है, यह प्रक्रिया केवल एक भगवत प्राप्त रसिक भक्त के अनुगत्य में ही किया जा सकता है। ऐसा भजन वही भक्त कर सकता है जो टालमटोल के दुष्प्रभाव से मुक्त है।

भक्ति में बढ़ोतरी

महाप्रभुजी कहते हैं "जीवेर स्वरूप हया कृष्णेर नित्य दास"। यानी जीवन का वास्तविक स्वरुप है श्री कृष्ण के दासत्व का। यही जीवन का सर्वश्रेष्ठ सिद्धांत है। एक दास को स्वचालित रूप से अपने मालिक के आहट का पता लगता है। इसी प्रकार एक शरणागत जीव को हृदय में श्री कृष्ण के आगमन का पता चल जाता है। जब सेवा प्राप्ति के उद्देश्य से हृदय कृष्ण भजन में लग जाता है तो कोई शक्ति ऐसे हृदय को विचिलित नहीं कर सकता। भजन पथ अपरिचित होने के बावजूद प्रभु का प्रकाश हृदय गुफ़ा से ज्वलंत होकर पथ को रौशन करता है। यह संभव है कि अतीत के दृष्टि विपथन की खामियां कुछ काल के लिए जीव को आवश्य ब्रह्मित कर सकते हैं और माया का प्रभाव जीव को उल्झा सकता है । परन्तु यह इन्द्रजाल भी क्षणिक है और नित समर्पण का भाव एवं भजन जीव को पार लगा देगा। यह परिस्थितियां केवल भजन और समर्पण बल को दर्शाते हैं। यही परिस्थितियां जीव को सशक्त बनाते हैं और भजन को बल प्रदान करते हैं। महाप्रभुजी के सिद्धांतों को आंशिक रूप से प्रमाणित करते हुए अनेक संस्थाएं स्थापित हुए हैं। यह ठाकुरजी की अनुकंपा है। कलियुग के अधिकांश जीव जो ठाकुरजी से विमुख हुए हैं, उनके पथप्रदर्शक के रूप में यह संस्थाएं काम करते हैं। इस तरह यह संस्थाएं ठाकुरजी के नाम प्रचार सेवा में लगें हैं।

इन संस्थानों से जुड़कर जब जीव साधना में लग जाता है तो साधना के दौरान एक समय ऐसा भी आता है जब रास्ता अपरिचित हो जाता है और यह संस्थाएं ऐसे गंभीर साधकों का उपयुक्त मार्गदर्शन नहीं कर पाते। जब आत्म शुद्धि की प्रक्रिया शुरू होती है तब इन संस्थाओं में उचित मार्गदर्शकों कि निश्चित कमी पाई जातीं हैं। जब भक्त भाव भक्ति के दायरे में प्रवेश करते हैं तो यही संस्थाएं इन कोमल भावों का उचित पालन-पोषण नहीं कर पाते। यही संस्थाएं उत्त्म भक्ति के लिए हानिकारक साबित होते हैं। इन बाधाओं को बुद्धिमानि, आत्मनिरीक्षण और दृढ़ता के साथ पार किया जाना चाहिए , एक उचित मार्गदर्शक के सानिध्य में। जब जीव एक ऐसे वैरागी गौडिय वैष्णव के आश्रय में आ जाता है तब भजन सर्व सिद्धि की तरफ़ बढने लगता है। यही सर्व सिद्धि का अमोघ मंत्र है।

चरण पहाडी

महाप्रभुजी के चरण चिन्ह

अन्य पशुआओं के चरण चिन्ह

हाथी के चरण चिन्ह

हरि नाम महोत्सव चरण चिन्ह